॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

॥ अथ ॥

(श्रीयोगवाशिष्ठ)

॥ वैराग्य प्रकरण ॥

प्रथम सर्ग ।
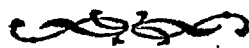
॥ कथारंभ वर्णनम् ॥

सुमिरि राम पद कमल शुभ, जो सब जग के इष्ट ।
लिखत यथा मति शोध कर, भाषा योगवाशिष्ठ ॥
यह प्रकरण वैराग्य को, सुख उपजावनहार ।
पढ़त सुनत समुझत गुनत, पुनि न परै संसार ॥
मुनि वशिष्ठ अरु राम को, भयो सुभग संवाद ।
तेहिको जे नर उर धरैं, नाशहि सकल विषाद ॥
मिश्र कन्हैयालाल ने, भाष्यो तिलक बनाय ।
संशय शोक मोह भ्रम, याहि सुने सब जाय ॥

जो सत्‌चित आनन्द रूप आत्मा है, तिसको नमस्कार है, । वह सत्‌चित आनन्द रूप कैसा है, सो कहते हैं । जिसके द्वारा यह सर्व भाषता है और

जिसमें यह सब लीन होता है, उस सत्य आत्म
को नमस्कार है। ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय, द्रष्टा, दर्शन
दृश्य, कर्ता, कारण, क्रिया जिसके द्वारा सिद्ध हो
हैं, ऐसा जो ज्ञानरूपी आत्मा है, उसको नम
है। जिस आनन्द के समुद्र के कण से स
विश्व आनन्दवान् है और जिस आनन्द से
जीव जीते हैं, उस आनन्दरूपी आत्मा को नमस्कार है।

कोई एक सुतीक्ष्ण नामक अगस्त्यजी का शिष्य था, उसके मन में एक संशय उत्पन्न हुआ, तब उसको निवृत्ति करने के अर्थ वह अगस्त्य मुनि के आश्रम को गया। वहाँ जाकर उसने अगस्त्य मुनि को यथाबिधि प्रणाम करके अत्यन्त नम्र भाव से प्रश्न किया।

सुतीक्ष्ण ने कहा—हे भगवन्! सर्वतत्त्वज्ञ! सर्व शास्त्रों के ज्ञाता! मेरे मनमें एक संशय उत्पन्न हुआ है सो आप कृपा करके निवृत्त कीजिये, अर्थात् मोक्ष का कारण कर्म है, अथवा ज्ञान है? इसका भेद मुझसे वर्णन कीजिये।

अगस्त्य जी ने कहा—हे ब्रह्मण्य ! केवल कर्म मोक्ष का कारण नहीं, और केवल ज्ञान से भी मोक्ष प्राप्त नहीं होता वरन् दोनों के द्वारा मोक्ष की प्राप्ति होती है। कर्म से अंतःकरण शुद्ध होता है, और मोक्ष नहीं होता, तथा अन्तःकरण की शुद्धि के बिना केवल ज्ञान से भी मुक्ति नहीं होती, सारांश शास्त्र का अर्थ (तात्पर्य) ज्ञान का निश्चय, अन्तःकरण शुद्ध हुए बिना ज्ञान की सिद्धि नहीं होती है। कर्म करके पहले अंतःकरण की शुद्धि होती है, फिर ज्ञान उत्पन्न होता है, तब कहीं मोक्ष की सिद्धि होती है, जैसे दोनों पंखों द्वारा पक्षी आकाश मार्ग को सुख पूर्वक उड़ता है, तैसे ही कर्म और ज्ञान दोनों से मोक्ष की सिद्धि होती है। हे ब्रह्मण्य ! उस अर्थ के अनुसार हम एक पुरातन इतिहास वर्णन करते हैं सो आप सुनिये।

कोई एक कारण नाम ब्राह्मण अग्निवेश का पुत्र था, सो उनके गुरु के निकट जाय कर चारों

बेद षडंग सहित अध्ययन किये, और फिर वह वहाँ से घरको चला आया और कर्म से रहित होकर मौनावलम्बन पूर्वक स्थित हुआ। सारांश वह संशय संयुक्त कर्मों से रहित हो गया। फिर जब पिता ने देखा कि यह कर्म से रहित होकर स्थित हुआ है, तो वे इस प्रकार कहने लगे।

अग्निवेश बोले—हे पुत्र! तुम कर्म की पालना क्यों नहीं करते ? और तुम बिना कर्म किये सिद्धि को कैसे प्राप्त होगे ? जिसके द्वारा तुम कर्म से रहित हुए हो, उसका कारण मुझसे कहो।

कारण ने कहा—हे पिता! एक संशय मुझको उत्पन्न हुआ है, इसी में कर्म से बिरत हो रहा हूँ, सो सुनिये। वेद में एक जगह कहा है कि, जब तक जिये, तब तक कर्म को करता ही रहे। अर्थात् अग्नि होत्रादिक जो कर्म हैं, सो करता ही रहै, अन्य स्थान में वर्णित है, कि न धर्म से मोक्ष होता है, न कर्म से मोक्ष होता है, न पुत्रादिक से मोक्ष होता है और

न केवल त्याग से ही मोक्ष होता है, तब इन दोनों में मुझको क्या कर्तव्य है ? सो आप कृपा करके बताइये ?

अगस्त्य जी ने कहा—हे पुत्र सुतीक्ष्ण ! इस प्रकार जब कारण ने पिता से कहा, तब अग्निवेश उसको इस प्रकार उत्तर देने लगेः—

अग्निवेश बोले—हे पुत्र ! एक कथा जो पहले हुई है उसको मैं सुनाता हूँ, तुम श्रवण कर उसको हृदय के बीच धारण करो। फिर आगे जो तुम्हारी इच्छा होवे, सो कार्य करना। पूर्वकाल में एकसुरुचि नाम की अप्सरा सब अप्सराओं में उत्तम थी, एक दिन वह हिमालय के उस शिखर पर बैठी थी, कि जहाँ कामना के द्वारा सन्तप्त हृदयवाले देवता और किन्नरों के गण अप्सराओं के साथ क्रीड़ा करते हैं और जहाँ गंगाजी का प्रवाह लहरें देता हुआ चला आता है, उस गंगा का जल परम पवित्र है, उस अप्सरा ने इन्द्र के दूत को आकाश से आते हुए देखा,

और जब वह निकट आ गया, तब अप्सरा ने उससे कहा, हे सौभाग्य देवदूत! तुम देवगणों में श्रेष्ठ हो, तुम कहाँ से आये और अब कहाँ जाओगे? सो कृपा करके बताओ।

देव दूत ने उत्तर दिया—हे सुभद्रे! तुमने जो पूछा है, उसका उत्तर श्रवण करो, प्रथम एक अरिष्ठ-नेमि राजर्षि थे, उन्होंने अपने पुत्र को राज्य देकर वैराग्य लिया और सम्पूर्ण विषयों की अभिलाषा त्याग कर गंधमादन पर्वत पर जाय कर तपस्या करने लगे। वे बड़े धर्मात्मा थे, उनसे मेरा एक काम था, वह काम करके मैं अब इन्द्र के पास जा रहा हूँ, बस अब तुम समझ गई होगी कि मैं देवराज इन्द्र का दूत हूँ और उनसे सब वृत्तान्त कहने के लिये चला जा रहा हूँ।

अप्सरा बोली;—हे भगवन! वह वृत्तान्त कौन सा है? मुझसे कहिये। मुझको तुम अति प्रिय लगते हो, इसी से पूछती हूँ। जो महापुरुष हैं उन्हीं से प्रश्न किया जाता है और वे उद्योग से रहित होकर उत्तर देते हैं, इसलिये तुम भी कहो?

देवदूत ने कहा,—हे भद्रे! जो वृत्तान्त है; सो सुनो, मैं विस्तार सहित तुमसे वर्णन करता हूँ। वह राजा गंधमादन पर्वत पर तप करने लगे और बड़ा तप किया। तब देवराज इन्द्रने मुझको बुलाकर आज्ञा दी कि हे दूत! तुम भाँति २ के वृक्ष लताओं से परिपूर्ण गंधमादन पर विमान, अप्सरा और नाना प्रकार की सामग्री, गंधर्व, यक्ष, सिद्ध, किन्नर और ताल, मृदंग आदि वादिक के संग जाओ और वहाँ जाय राजा को विमान पर बैठाय कर यहाँ ले आवो। हे सुन्दरि! जब इन्द्र ने ऐसा कहा, तब मैं विमान और सामग्री सहित वहाँ आया और राजा से कहा,-हे राजन! मैं तुम्हारे लिये विमान लेकर आया हूँ। इस पर चढ़कर आप स्वर्ग को चलिये और देवताओं के भोग भोगिये। जब मैंने इस प्रकार कहा, तब मेरा वचन सुनकर राजा कहने लगे:—

राजाने कहा,—हे देवदूत! प्रथम स्वर्गका वृत्तान्त आप मुझसे कहिये कि आपके स्वर्ग में दोष और

गुण क्या हैं। उनको सुनकर मैं हृदय में विचारूँ और पीछे यदि मेरी इच्छा होगी तो आऊँगा। देव दूत ने कहा,—हे राजन! स्वर्ग में बड़े २ दिव्य भोग हैं, वह स्वर्ग बड़े पुण्य से जीव को मिलता है। बड़े पुण्यवान् पुरुष ही स्वर्ग का उत्तम सुख पाते हैं, जो मध्यम पुण्य वाले हैं, सो स्वर्ग के मध्यम सुख पाते हैं और कनिष्ठ पुण्य वाले स्वर्ग के कनिष्ठ सुख पाते हैं। बस स्वर्ग में जो गुण हैं, सो मैंने आपसे वर्णन किये। अब उस स्वर्ग के जो दोष हैं सो भी सुनो। हे राजन्! आपसे ऊँचे बैठे दिखाई देते हैं और उत्तम सुख भोगते हैं, उनको देख कर ताप की उत्पत्ति होती है, क्योंकि उनकी उत्कृष्टता सही नहीं जाती और जो कोई अपने ही समान सुख भोगते हैं उनको देख कर क्रोध उत्पन्न होता है, यह कि हमारे समान क्यों बैठे हैं, और जो आपसे नीचे बैठे हैं वे कनिष्ठ पुण्य वाले हैं, उनको देखकर आपको अभिमान उत्पन्न होता है कि मैं इनसे श्रेष्ठ हूँ और एक और

भी दोष है कि जब इनके पुण्य क्षीण होते हैं, तब उसी समय में इनको मृत्युलोक में गिरा देते हैं। फिर एकक्षण भी वहाँ नहीं रहने देते। हे राजन्! आपने स्वर्ग के जो गुण दोष पूछे सो मैंने वर्णन किया।

हे भद्रे! जब इस प्रकार राजा से मैंने कहा तब वे राजा मुझसे बोले,—हे देवदूत! इस स्वर्ग के योग्य हम नहीं हैं और हमको उसकी इच्छा भी नहीं है। हमतो केवल उग्र तप ही करेंगे और तप करके इस देह को भी त्याग देंगे। जैसे सर्प अपनी केंचुली को पुरानी जानकर त्याग देता है, तैसे ही हम भी देह त्याग देंगे। हे देवदूत! आप अपने इस विमान को जहाँसे लाये हो वहीं को ले जाओ, हमारा तो इसको नमस्कार है।

हे देवि! जब इस प्रकार राजा ने मुझसे कहा तब मैं विमान और अप्सरा आदि सबको लेकर स्वर्ग में चला गया, और सम्पूर्ण वृत्तान्त इन्द्र से कहा।

तब इन्द्र प्रसन्न हुए और सुन्दर वाणी द्वारा मुझसे कहने लगे कि, हे दूत! तुम जहाँ राजा है वहाँ फिर जाओ, क्योंकि अब वह संसार से विरक्त हुआ है, और उसको आत्मपद की इच्छा हुई है, उसको साथ लेकर आत्मा को जानने वाले महर्षि बाल्मीकि जी के पास जावो और उनके पास ले जाकर मेरा संदेश देना कि, हे महाऋषि! इस राजाको आप तत्त्वबोध का उपदेश कीजिये, यह बोध का अधिकारी है, क्योंकि इसको स्वर्गकी भी इच्छा नहीं और अमर होने की वाञ्छा नहीं है, इस कारण आप इसको तत्त्वबोध का उपदेश कीजिये, कि जिसको पाकर यह संसार के दुःखसे छूट जाय।

हे सुभद्रे! जब इस प्रकार देवराज इन्द्र ने मुझसे कहा, तब मैं चला और जहाँ राजा था, वहाँ जाकर मैंने कहा, हे राजन्! आप संसार समुद्र से छूटने के निमित्त महर्षि बाल्मीकि जी के पास चलिये। वे आप को उपदेश करेंगे। तत्पश्चात् उनको साथ

लेकर मैं महर्षि वाल्मीकिजी के स्थान पर गया और वहाँ राजा को बैठाल कर इन्द्र का संदेशा दिया। तब महाराज ने महर्षि को प्रणाम किया, महात्मा वाल्मीकि जी आशीर्वाद देकर बोले कि हे राजन्! कहिये कुशल से तो हो ?

राजा बोले, हे भगवन्! हे परम तत्वज्ञ! और वेदान्त के जानने वालों में श्रेष्ठ! मैं अब कृतार्थ हुआ आपका दर्शन करके आज मुझको सब प्रकार से कुशल हुई है, किन्तु अब कुछ पूछना चाहता हूँ? कृपा करके उसका उत्तर दीजिये, जो संसार बन्धन से मुझको छुटकारा मिले।

वाल्मीकिजी बोले,—हे राजन! अब महारामायण की कथा मैं आपसे कहता हूँ, उसको श्रवण करके उसका तात्पर्य हृदय में धारण करने का यत्न कीजिये जब तात्पर्य हृदय में धारण करोगे, तब जीवन मुक्त होकर विचरोगे। हे राजन! यह वशिष्ठजी और श्रीरामचन्द्रजी का सम्वाद है, जिसमें मोक्ष

का उपाय कहागया है, इसको सुनकर जैसे श्रीराम-चन्द्रजी अपने स्वभाव में स्थित हुए थे और जीवन मुक्त होकर बिचरे थे तैसेही आप भी जीवन मुक्त होकर बिचरेंगे।

राजा ने कहा,—हें भगवन्! श्रीरामचन्द्रजी कौन थे और कैसे थे? तथा वे कैसे हो कर बिचरे थे? सो कृपा करके वर्णन कीजिये।

बाल्मीकिजी ने कहा, हे राजन! शापके वशी-भूत होकर भगवान् विष्णु ने छलसे नर शरीर धारण किया था। यद्यपि वे अद्वैत ज्ञान से युक्त हैं तथापि कुछेक अज्ञान को अंगीकार करके मनुष्य का शरीर धारण किया था।

राजाने पूछा,—हे भगवन्! चिदानन्द रूप श्री-हरि को किस कारण शाप हुआ, और किसने दिया था? यह सब बिस्तार सहित वर्णन कीजिये।

बाल्मीकि जी ने कहा,—हे राजन्! एक समय निष्काम महात्मा सनत्कुमारजी ब्रह्मपुरी म बैठे हुये

थे, उस काल त्रिलोक के पति वैकुण्ठ से उतर कर ब्रह्मपुरी में आये, उनको देख कर ब्रह्माजी के सहित सारी सभा उठकर खड़ी हो गई, और सबने उनका पूजन किया, परन्तु सनत्कुमार जी ने नहीं किया। यह देख कर विष्णु भगवान् ने कहा,—हे सनत्कुमार! आपको निष्कामता का अभिमान है, इस कारण आप काम से आतुर होंगे और स्वामिकार्तिक आपका नाम होगा। जब विष्णु भगवान ने ऐसा कहा, तब सनत्कुमारजी बोले, हे विष्णु! आपको सर्वज्ञता का अभिमान है, सो आपकी भी वह सर्वज्ञता किसी समय निवृत्त होगी और आप अज्ञानी होंगे। हे राजन्! भगवान् विष्णु को एक तो यह शाप हुआ और दूसरा भी सुनो।

एक दिन भृगु की स्त्री जा रही थी और उसके वियोग से वह ऋषि महान दुःखी हो रहे थे, बस उनको देख कर विष्णु हँस पड़े, तब भृगु ब्राह्मण ने कुपित हो शाप दिया, हे विष्णु! जिस प्रकार

आपने मुझको देख कर मेरी हँसी उड़ाई है, इसी प्रकार मेरे समान आप भी स्त्री के वियोग से आतुर होंगे।

तीसरे, एक दिन देवशर्मा ब्राह्मण ने भी जो नृसिंह भगवान् को शाप दिया था, सो सुनिये। एक दिन नृसिंह भगवान् गंगाजी के तट पर गये थें, वहाँ देवशर्मा ब्राह्मण की स्त्री बैठी थी, उसको देख कर नृसिंह जी भयानक रूप दिखा कर हँसे, उसको देख कर ऋषि की पत्नी ने भय के मारे प्राण त्याग किये, तब देवशर्मा ने कुपित होकर शाप दिया, कि आपने जो मेरी स्त्री का वियोग कराया है। इस कारण आप भी स्त्री का वियोग सहेंगे।

हे राजन्! सनत्कुमार भृगु और देवशर्मा के दिये शाप द्वारा विष्णुभगवान् ने मनुष्य का शरीर धरा और राजा दशरथजी के घर प्रगटे। हे राजन्! यह शरीर धारण करने पर आगे जो वृत्तान्त हुआ है, सो वह भी सावधान होकर सुनो। जो देवलोक

और पृथ्वीलोक तथा पाताल को प्रकाशित करता है, और भीतर बाहर आत्म तत्व से पूर्ण ऐसा जो अनुभवात्मक मेरी आत्मा है सो उस सर्वात्मा को नमस्कार है।

हे राजन् ! मैंने जो इस शास्त्र का आरम्भ किया है, सो उसका विषय क्या है, और प्रयोजन तथा सम्बन्ध क्या है, एवं अधिकारी कौन है ? सो भी श्रवण कीजिये। जो सच्चिदानन्द रूप अचिंत्य चिन्मात्र आत्मा को ब्रह्माभिन्न जनावता है, सो विषय है, और परमानन्द की प्राप्ति तथा अनात्म अभिमान जनित दुःख की निवृत्ति है सो यह इसमें प्रयोजन है। ब्रह्मविद्या और जो उपाय के द्वारा आत्मपद की प्रतिपादक हैं सो मोक्ष है, और जिसको यह निश्चय है, कि मैं अद्वैत उस ब्रह्म अनात्म देह के साथ बँधा हुआ हूँ सो उससे किसी प्रकार छुटकारा पाऊँ वह न अतिज्ञानवान है और न मूर्ख हैं, ऐसा जो विकृत आत्मा है वही यहाँ अधिकारी है।

यह शास्त्र मोक्ष का उपाय है, और वही परमा-

नन्द की प्राप्ति करने वाला है, जो पुरुष इसको बिचारे वह ज्ञानवान होवे और फिर जन्म मरण रूपी संसार में न आवे। हे राजन्! यह महारामायण अत्यन्त पवित्र है, केवल श्रवण मात्र से ही सब पापों का नाश करती है। यह राम कथा प्रथम मैंने अपने शिष्य भारद्वाज को सुनाई है।

एक समय भारद्वाज चित्त को एकाग्र करके मेरे पास आये थे, और उनको मैंने उपदेश किया था। उसको सुन कर वे वचनरूपी समुद्र से सार रूपी रत्न निकाल कर हृदय में धारण कर एक समय सुमेरु पर्वत पर गये, वहाँ पितामह ब्रह्माजी बैठे हुए थे। भारद्वाज ने जाकर उनको प्रणाम किया और पास बैठ गये। फिर ब्रह्माजी को यह कथा सुनाई। तब ब्रह्माजी ने प्रसन्न होकर भारद्वाज से कहा, हे पुत्र! तुम कुछ वर माँगो मैं, तुम पर प्रसन्न हुआ हूँ। हे राजन्! जब इस प्रकार ब्रह्माजी ने कहा, तब परम उदारात्मा भारद्वाजजी कहने लगे—हे भूत—भविष्य

के ईश्वर ! यदि आप सत्य ही प्रसन्न हो गये हैं-तो यह वर दीजिये कि सांसारिक दुःख से सब प्राणी छूट जायें और परमपद को प्राप्त करें तथा ऐसा कोई उपाय भी बताइये।

ब्रह्माजी ने कहा—हे पुत्र ! आप अपने गुरु महर्षि वाल्मीकिजी के पास जाइये, और उन्होंने जिस आत्मबोध महारामायण आनिन्दित शास्त्र का प्रारम्भ किया है, उसको सुनिये। क्योंकि उस परम पवित्र महारामायण के सुनने पर मनुष्य संसार समुद्र से सहज ही पार हो जाता है।

वाल्मीकिजी बोले—हे राजन् ! इस प्रकार कह कर परमेष्ठी ब्रह्माजी स्वयं भारद्वाज को साथ ले मेरे आश्रम में आये, तब मैंने भले प्रकार उनका पूजन किया। अनन्तर सब जीवों के हितकारी ब्रह्माजी मुझसे कहने लगे।

ब्रह्माजी बोले—हे मुनियों में श्रेष्ठ वाल्मीकिजी ! यह जो आपने श्रीरामचन्द्रजी के स्वभाव के कथनका

आरम्भ किया है, सो अब इस उद्यम को छोड़ना नहीं वरन् इसको आदि से अन्त तक समाप्त करना, क्योंकि यही मोक्ष उपाय, 'संसाररूपी समुद्र से पार करने को जहाज स्वरूप है, अस्तु इसके द्वारा सब जीव कृतार्थ होंगे।

बाल्मीकिजी ने कहा,—हे राजन् ! इस प्रकार ब्रह्माजी मुझ से कह कर ऐसे अन्तर्ध्यान हो गये, जैसे समुद्र से आवर्त-चक्र पर्यन्त उठकर फिर उसी में लीन हो जाता है। तब मैंने भारद्वाज से पूछा कि हे पुत्र ! ब्रह्माजी ने क्या कहा था, सो तो बताओ ?

भारद्वाज ने उत्तर दिया, हे भगवन् ! आपको ब्रह्माजी ने ऐसा उपदेश किया है कि हे मुनिश्रेष्ठ ! यह जो आपने राम के स्वभाव के कथन का उद्यम किया है, सो इसको छोड़ना नहीं, वरन् अन्त पर्यन्त समाप्त करना, क्यों कि इस संसार समुद्र से पार करने को यह कथा जहाज स्वरूप है, इसके द्वारा अनेक जीव कृतार्थ होंगे, और संसार के संकट से छुटकारा प्राप्त कर सकेंगे।

वाल्मीकिजी ने कहा—हे राजन् ! जब इस प्रकार ब्रह्माजी ने मुझको उपदेश दिया, तब ब्रह्माजी की आज्ञा के अनुसार मैंने ग्रन्थ बनाया और भारद्वाज से कहा, हे पुत्र ! वशिष्ठजी के उपदेश को पाकर जिस प्रकार श्रीरामचन्द्र जी निःशंक होकर विचरे हैं, तैसे ही आप भी विचरिये । तब भारद्वाज पूछने लगे ।

भारद्वाज ने कहा—हे भगवन् ! श्रीरामचन्द्र, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, सीता, कौशिल्या, सुमित्रा और दशरथजी आठ तो यह जीवनमुक्त हुए हैं, और अष्ट मन्त्री, अष्ट गुण और वशिष्ठ, वामदेव आदि अट्ठाइस यह भी जीवन मुक्त होकर विचरे हैं, इनके नाम भी सुनिये, श्रीरामचन्द्रजी से लेकर दशरथजी तक आठ तो, यह कृतार्थ हुए हैं, और कुन्तभासी १, शतवर्धन २, सुखधाम ३, विभीषण ४, इन्द्रजीत ५, हनुमान् ६, वशिष्ठ ७, वामदेव ८, इन आठ मन्त्रीगणों ने निःशंक होकर चेष्टा करी है और सदा अद्वैत निष्ठ हुए हैं । इनको कदाचित् स्वरूप से द्वैतभाव की स्फूर्ति नहीं हुई

है। अनामय पद विषै स्थिति में तृप्त हो रहे और केवल चिन्मात्र परम पावन शुद्ध-पद को प्राप्त हुए हैं।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे वैराग्य प्रकरणे मुरादाबाद निवासी कन्हैयालाल मिश्रकृत भाषा टीकायां कथारम्भ वर्णनं प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

द्वितीय सर्गः।

॥ अथ तीर्थयात्रा वर्णनम् ॥

भारद्वाज ने कहा—हे भगवन्! जीवनमुक्त की स्थिति कैसी है और रामजी कैसे जीवनमुक्त हुए हैं? सो आदि से लेकर अन्त तक विस्तार सहित सब वर्णन कीजिये।

बाल्मीकिजी बोले,—हे पुत्र! यह जगत् जो भासता है; सो वास्तविक कुछ उत्पन्न नहीं हुआ है केवल अविचार के द्वारा भासता है और विचार करने

से निवृत हो जाता है। जिस प्रकार भ्रम से आकाश में नीलता की प्रतीति दूर हो जाती है। तैसे ही अविचार करके जगत् भासता है, और विचार से लीन हो जाता है। हे शिष्य! जब तक सृष्टि का अत्यन्त अभाव नहीं होता, तब तक परम-पद की प्राप्ति नहीं होती। जब दृश्य का अत्यन्त अभाव हो जायगा तब पीछे शुद्ध चिदाकाश आत्मसत्ता भासैगी। कोई इस दृश्यको महाप्रलय में कदाचित् अभाव कहते हैं; किन्तु मैं आप से तीनों ही काल का अभाव कहता हूँ सो सशास्त्र होने से इस शास्त्र में श्रद्धा संयुक्त आदि से लेकर अन्त तक श्रवण करो और तिसको धारण करो तब भ्रान्ती की निवृत्ति हो जावेगी और अव्याकृत पद की प्राप्ति होवेगी। हे शिष्य! संसार भ्रम मात्र सिद्ध है। इसको भ्रम मात्र जान कर विस्मरण करना, बस यही मुक्ति है और इसमें बंधन का कारण बासना है। बासना के द्वारा जीव भटकता है। जब बासना का क्षय हो जाता है तब परमपद की प्राप्ति होती है। एक बासना

का नाम पुतला है उसका नाम मन है। जैसे जल सरदी की अधिकता पाय के बरफ होता है, और पीछे सूर्य के तापसे पिघल कर जल होता है, तब केवल शुद्ध जल हो जाता है, तैसे ही आतमरूपी जल है, तिसी में संसार की सत्यता रूपी जड़ता-शीतलता है जिसके द्वारा मनरूपी बरफ का पुतला हुआ है। अस्तु जब ज्ञान रूपी सूर्य उदय होगा तब संसार की सत्यता-रूपी जड़ता और शीतलता निवृत्त हो जायँगी।

फिर जब संसार की सत्यता और वासना निवृत्त हुइ तब मन नष्ट हो जाता है और जब मन नष्ट हुआ तब परम कल्याण हुआ, अतएव इस बंधन का कारण बासना है। बासना के क्षय होने से मुक्ति है। वह बासना दो प्रकार की है।'एक शुद्ध और दूसरी अशुद्ध। यह जो अपने वास्तविक स्वरूप के अज्ञान से अनात्मा जो है तिसमें अहंकार करना जब इसको अनात्मा में आत्मा का अभिमान होता है, तब नाना प्रकार की बासना उपजती है, तिनके द्वारा यह घटी

यन्त्र की नाईं पड़ा भ्रमता रहता है। हे साधु ! यह जो पंचभूत का शरीर आप देखते हैं, सो सब वासना रूप है। वासना के सहारे खड़ा है जैसे माला के दानें धागे के आश्रय से खड़े होते हैं और जब धागा टूट जाता है तब सब अलग २ हो जाते हैं, और ठहरते नहीं हैं तैसे ही वासना के क्षय होने पर पंचभूत का शरीर नहीं रहता, बस सब अनर्थ का कारण वासना है। किन्तु जो शुद्ध वासना उससे जगत् का अत्यंत अभाव निश्चय होता है। हे शिष्य! अज्ञानी का जो निश्चय है, सो बासना के द्वारा पुनर्जन्म का कारण हो जाता है; किन्तु ज्ञानी की वासना पुनर्जन्म का कारण नहीं होती। जैसे एक कच्चा वीज होता है और दूसरा दग्ध वीज होता है। उसमें जो कच्चा है, सो फिर ऊगता है और जो दग्ध हुआ है सो फिर दूसरी वार नहीं ऊगता, तैसे ही अज्ञानी की बासना रस सहित है सो जन्म का कारण है और ज्ञानी की बासना रस रहित है सो जन्मका कारण नहीं। ज्ञानी

की चेष्टा स्वाभाविक गुण द्वारा बड़ी होती है वह किसी गुण के साथ मिलकर अपने में चेष्टा नहीं देखता। खाता है, पीता है, लेता है, देता है, बोलता है, चलता है, व्यवहार करता है, किन्तु भीतर सदा अद्वैत निश्चय को धरता है। कदाचित् द्वैत भावना उसको स्फति नहीं है। अपने स्वभाव में स्थित है। इसलिये निर्गुण और अरूप है। उसकी चेष्टा भी जन्म का कारण नहीं है—जैसे कुम्भार का चाक है, सो जब तक उसको ताव दिया जाय तब तक वह घुमता है और जब ताव देना छोड़ दिया तब रुक जाता है। तैसे ही जब तक अहंकार सहित बासना होती है, तब तक जन्म पाता है और जब अहंकार से रहित हुआ तब फिर जन्म नहीं पाता। हे साधु! यह जो आज्ञा-नरूपी बासना है तिसको नाश करने का उपाय एक ब्रह्म-विद्या श्रेष्ठ है, वह ब्रह्म-विद्या मोक्ष का उपाय शास्त्र है, जबसे शास्त्ररूपी गर्त में गिरेगा, तब से कल्प पर्यन्त अकृत्रिम अर्थात् वास्तविक पद को न पावेगा और जो

ब्रह्म-विद्या का आश्रय करेगा, सो सुखपूर्वक आतमपद को प्राप्त होगा। हे भारद्वाज! यह मोक्ष उपाय शास्त्र श्री-रामचन्द्रजी और वशिष्ठजी का संवाद है सो विचारने योग्य है। और बोध का परम कारण है अतएव आदि से अन्त तक मोक्ष उपाय श्रवण कर जैसे श्रीरामचन्द्र-जी जीवनमुक्त होकर बिचरे हैं सो सुनिये।

एक दिन श्रीरामचन्द्रजी विद्या पढके विद्या-लय से अपने गृह में आये और सारा दिन बिचार में ही उन्होंने व्यतीत कर दिया फिर ठाकुरद्वारों के दर्शन का मन में संकल्प करके पिता दशरथजी के पास आये। जो सम्पूर्ण प्रजाको सुख में रखते थे और जिनसे सब प्रजा को सुख मिला है, उन पिता दशरथजी का चरण श्रीरघुनाथजी ने इस प्रकार ग्रहण किया कि जैसे सुन्दर कमल को हंस ग्रहण करै जैसे कमल फूल के तले कोमल तरैया होती है और उन तरैया सहित कमल को हंस पकड़ता है। तैसे ही दशरथजी की अँगुलियों को श्रीरामचन्द्रजी ने ग्रहण

किया और फिर बोले हे पिता! मेरा चित्त तीर्थ और ठाकुरद्वारों के दर्शन को चाहता है। यदि आप आज्ञा देवें तो मैं तीर्थ और ठाकुरद्वारों का दर्शन कर आऊँ। मैं आपका पुत्र हूँ, अतः आप को आज्ञा देना योग्य है। अब तक मैंने आप से कभी कुछ कहा भी नहीं है। आज यह पहली ही प्रार्थना की गई है। अतएव आप आज्ञा दीजिये। इस विषय में मुझको निराश नहीं करना। क्योंकि त्रिभुवन में ऐसा कौन है कि जिसका मनोर्थ इस घर से सिद्ध न हुआ हो? इस वास्ते आज्ञा देनी चाहिये।

बाल्मीकिजी बोले—हे भारद्वाज! इस प्रकार जब श्रीरामचन्द्रजी ने कहा, तब पास बैठे हुए मुनि-वशिष्ठजी ने भी दशरथजी से कहा हे राजन्! श्रीरामचन्द्रजी को आज्ञा दीजिये कि वे तीर्थ कर आवें और ये राजकुमार हैं इसलिये इनके साथ कुछ सेना भी भेजिये। इसके अतिरिक्त यथेष्ठ धन भी देकर मंत्रियों के साथ बिदा कीजिये जो यह दर्शन

कर आवें। हे भारद्वाज! जब ऐसे बिचार किया, तब महाराज ने शुभ मुहूर्त देख कर श्रीरामचन्द्रजी को आज्ञा दी। जब वे चलने लगे, तब पिता और माता के चरण लगे। पीछे सबको छाती से लगा रुदन करने लगे। उनसे मिलकर फिर आगे चले। लक्ष्मण आदि भाई, मंत्री और विधि के ज्ञाता वशिष्ठजी को भी संग ले लिया। इस प्रकार वहुत धन, सेना साथ लिये और दान पुण्य करते जव घरके वाहर निकले, तब वहाँ के सव पुरुष और स्त्रियों ने श्रीरामचन्द्रजी के ऊपर फूल कली तथा माला की वर्षा की। वह ऐसी वर्षा हुई मानों मेघों द्वारा वर्षा हो रही है और फिर श्रीरामजी की मुर्ति को सबने हृदय में धर लिया, इसी प्रकार श्रीरामचन्द्रजी वहाँ से चले, फिर व्राह्मण और निर्धन को दान देते-देते गंगा, यमुना सरस्वती आदि में विधि संयुक्त स्नान कर पृथ्वी के चारों कोण उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम का दान किया, तथा चारों ओर समुद्र में स्नान कर के सुमेरु

पर्वत पर गये, वहाँ से हिमालय पर्वत पर गमन किया। अनन्तर गंगा आदि सब तीर्थ में स्नान करने पर शालिग्राम बद्रि, केदार आदि में स्नान और दर्शन किया। इस भाँति सब तीर्थों में स्नान, दान, तप, ध्यान विधि संयुक्त यात्रा करी और जैसी जहाँ विधि थी, उसके अनुसार कार्य किया और एक वर्ष में सम्पूर्ण यात्रा समाप्त करके श्रीरामचन्द्रजी फिर अपने नगर में लौट आये और आनन्द पूर्वक आनकर श्री पिताजी के चरणों में प्रणाम किया।

इति श्री योगवाशिष्ठे वैराग्य प्रकरणे भाषा टीकायांतीर्थ-यात्रा वर्णनं नाम द्वीतीयः सर्गः ॥ २ ॥

तृतीयः सर्गः।

॥ अथ विश्वामित्रागमन वर्णनं ॥

बाल्मीकिजी बोले—हे भारद्वाज ! जब श्रीराम-चन्द्रजी यात्रा समाप्त करके अपनी अयोध्या में लौट आये तब नगर के बासी स्त्री पुरुषों ने उन पर फूल और कलियों की वर्षा करी तथा जय जय शब्द मुख

से उच्चारने लगे और सबने बड़ा उत्साह दिखाया। फिर जैसे इन्द्र का पुत्र अपने स्वर्ग में आता है, तैसेही श्रीरामचन्द्रजी अपने घर में आये। पहिले महाराज दशरथजी को प्रणाम करके फिर वशिष्ठ-जी को प्रणाम किया। पीछे सब सभा के लोगों से यथा योग्य मिलकर अन्तःपुर में आये, वहाँ कौशल्या आदि माताओं को यथा योग्य, नमस्कार किया और जो वहाँ बान्धव कुटुम्ब थे उन सब से भी मिले।

हे भारद्वाज! इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजी के आने का उत्सव सात दिन तक होता रहा। उस काल में कोई तो श्रीरामचन्द्रजी से मिलने आता और कोई कुछ माँगने आता, उन सब का मनोर्थ पूर्ण किया गया। नाना भाँति के बाजे बजने लगे। भाट आदि बन्दीजनों ने स्तुति आरम्भ करी। अब श्रीरामचन्द्रजी जिस नित्य—कार्य में प्रवृत्त हुए सो भी सुनिये अर्थात् श्रीरामचन्द्रजी प्रातः काल में उठ कर स्नान संध्या-दिक सत्कर्म करते, इस प्रकार उत्साह पूर्वक दिन रात को बिताते थे।

एक दिन प्रातःकाल में उठ कर पिता दशरथजी को देखा जैसे चन्द्र का तेज तैसा ही तेज उनका हो रहा है और वशिष्ठादिक की सभा बैठी थी, वहाँ वशिष्ठजी के साथ श्रीरामचन्द्रजी कथा-वार्ता करते। वहाँ एक दिन राजा दशरथजी ने कहा, हे राम! तुम शिकार खेलने जाया करो, उस समय में श्रीरामचन्द्र की अवस्था १६ वर्ष से कम थी। ऐसे कोमल राजकुमार थे, और लक्ष्मण शत्रुघ्न भाई सब साथ थे, भरत जो स्नान करने को गये थे, उनके संग भी आनन्द की बातें किया करते। फिर उनके साथ स्नान संध्यादिक नित्य कर्म कर के भोजन के पीछे शिकार खेलने जाते और वहाँ जो लोगों को दुःख देने हारें ज़ानवर देखते, तिनको मारते और सबको प्रसन्न करते, इस प्रकार दिन को शिकार खेलते और रात्रि को निशान बजवाते हुए अपने घर आते। इस प्रकार कितने ही दिन बीत गये। एक दिन श्रीरामचन्द्रजी बाहर से रनवास में आकर उदास मन से स्थित हुए।

हे भारद्वाज ! राजकुमार श्रीरामचन्द्रजी के दैनिक जितने कार्य थे उन सबको त्याग कर वे इकान्त में चिन्तित मनुष्य की नाईं बैठे रहने लगे।

जितने कुछ रससंयुक्त इन्द्रियों के विषय हैं उनको त्याग कर शरीर से दुर्बल जैसे हो गये। मुख की कान्ति घट गई। पीला वर्ण हो जाता है, तैसे ही रामचन्द्रजी का मुख पीला होगया, सारांश जैसे कमल सूख कर पीत वर्ण हो गया। और सूखे कमल पर भँवरे जिस प्रकार बैठते हैं, तैसे ही सूखे मुख कमल पर नेत्ररूपी भँवरे भासने लगे, उसकी भी शोभा होने लगी, और इच्छा निवृत्त हो गई, जैसे शरद काल में ताल निर्मल होता है, तैसे ही इच्छा रूपी मलों से रहित चित्त रूपी ताल भी निर्मल होता है, और दिन दिन शरीर निर्मल होता जाता है, और जहाँ बैठें वहाँ चिन्ता संयुक्त बैठे रह जावें, उठें नहीं और जब बैठें तब गाल पर हाथ धर के बैठें, जब टहलुए, मन्त्री बहुत कहें कि—प्रभो ! यह स्नान सन्ध्या का समय हुआ है सो अब उठिये, तब

उठ कर स्नानादिक करें, जितनी कुछ खाने, पीने, बोलने, चालने, पहरने, आदि की क्रिया है, सो सब विरस होगई जब श्रीरामचन्द्रजी इस अवस्था को प्राप्त हुए, तब लक्ष्मण और शत्रुघ्न उनको संशय युक्त देख कर आप भी उसी प्रकार ही बैठे।

तब महाराज दशरथजी यह वार्ता सुनकर श्रीरामचन्द्रजी के पास आये और देखा कि उनका प्यारा राम महा कृश जैसा हो गया है। यह दशा देख कर महाराज चिन्ता करने लगे कि हाय, हाय, इस मेरे लाल की क्या अवस्था हुई है। अनन्तर महाशोक से श्रीरामचन्द्रजी को गोद में बैठाल कर पूछने लगे कि हे राम! तुमको ऐसा क्या दुःख मिला है। जिससे ऐसा शोक युक्त हुआ है? तब श्रीरामचन्द्रजी ने कहा कि हे पिता! मुझको दुःख तो कुछ भी नहीं है, इतना कह कर चुप हो रहे, जब कितने ही दिन इस प्रकार बीत गये, तब राजा भी शोकयुक्त हुए, और सब स्त्रियाँ भी शोकवान् हुईं,

और राजा, मंत्री मिल कर विचार करने लगे, कि अब पुत्र का किसी स्थान में विवाह कर देना चाहिये, और फिर यह भी विचार किया, कि इसका क्या कारण है, मेरा पुत्र शोक युक्त रहता है, तब वशिष्ठजी से कहा कि हे मुनीश्वर! मेरा पुत्र शोक में क्यों रहता है।

तब वशिष्ठजी ने कहा— राजन्! महापुरुष को जो क्रोध होता है सो किसी अल्प कारण से नहीं होता, जैसे पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, इत्यादि महा भूत अल्प कारण से विकारवान् नहीं होते वरन् जब जगत् की उत्पत्ति प्रलय होती है तब विकारवान् होते हैं तैसे ही महापुरुष भी अल्प कार्य में विकार-वान् नहीं होते, इस वास्ते हे राजन्! आप शोक नहीं कीजिये। यदि राम शोकवान् हुआ है, सो वह किसी अर्थ के निमित्त ही हुआ होगा। पीछे उसको सुख मिलेगा। अतएव आपको शोक नहीं करना चाहिये।

वाल्मीकिजी बोले—हे भारद्वाज! इस प्रकार मुनिवर वशिष्ठजी और राजा विचार करते ही थे, कि

उसी समय में विश्वामित्रजी अपने यज्ञ के अर्थ आये, और उन्होंने राजा दशरथजी के गृहमें आकर द्वारपाल से कहा कि राजा दशरथजी से जाकर कहो कि गाधिका पुत्र विश्वामित्र बाहर खड़ा है। तब इसनें औरों से भी आकर कहा कि हे स्वामी! एक बड़ा तपस्वी द्वार पर खडा है, और उसने हम से कहा है कि राजा दशरथजी के पास जाकर कहो कि विश्वामित्र आये हैं, वे सुन कर राजा दशरथजी के पास गये और कहा कि विश्वामित्र गाधि के पुत्र द्वार पर खड़े हैं। उन काल सम्पूर्ण मण्डलेश्वरों के पूज्य राजा दशरथजी सब सहित सिंहासन पर बैठे थे और बडे तेज द्वारा सम्पन्न ऋषि, मुनि, साधु, प्रधान और मित्रादिकों से घिर रहे थे, सारांश राजा इस प्रकार अपनी सभा में विराजमान हो रहे थे।

हे भारद्वाज! उन राजा से इस प्रकार द्वारपाल ने कहा, तब राजा जो मण्डलेश्वरों से घिरे हुए थे, और बड़े तेजवान थे, सुनतें ही सुवर्ण के सिंहासन

पर से उठ खड़े हुए और पैदल चलते हुए। उन राजा की एक ओर वशिष्ठजी और दूसरी ओर वामदेवजी, तथा सुभट की नाईं मण्डलेश्वर स्तुति करते हुए चले तब जहाँ से विश्वामित्रजी दृष्टि आये, तहाँ से प्रणाम करने लगे, जहाँ पृथ्वी पर राजा का शिर लगे, तहाँ पृथ्वी भी मोती की समान सुन्दर हो जाये। इस प्रकार शीश नवाते हुए राजा विश्वामित्रजी के आगे चले। विश्वामित्रजी बड़ी बड़ी जटा शिर पर से कांधे तक डाले हुए, अग्नि की नाईं प्रकाशित शरीर, सुवर्ण की नाईं प्रकाशमय हृदय, में जिनके अत्यन्त कोमल स्वभाव, महा तेजवान्, सुन्दर कान्ति और शान्ति रूप हाथ में बाँसकी तन्द्री लिये हुए थे, ऐसे महा धैर्यवान् विश्वामित्रजी को प्रणाम करते हुए राजा दशरथ उनके चरण पर जा गिरे, जैसे सूर्य सदा शिव के चरन पर जाकर गिरे। तैसे ही मस्तक नवाकर कहा—हे ऋषे! मेरे बड़े भाग्य हुए जो आपका दर्शन हुआ है, मेरे ऊपर आपने बड़ा अनु-

ग्रह किया है, हमको बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ है, जो अनादि अनन्त है, आदि मध्य, अन्त से रहित अविनाशी है, ऐसा जो आनन्द है सो आपके दर्शन करके मुझको प्राप्त हुआ है। हे भगवन्! आज मेरा अहो भाग्य है जो मैं धर्मात्मा कहलाऊँगा, क्यों कि आप मेरी कुशल के निमित्त आये हो, भगवान्! आपका पधारना मेरे लक्ष में नहीं था और आपने बड़ी कृपा करी जैसे सूर्य कोई कार्य करने के लिये पृथ्वी पर आवे, तैसेही आप मुझको दिखाई देते हैं। आप सबसे उत्कृष्ट हो, क्योंकि आप में दो गुण विद्यमान् हैं, अर्थात् एक तो आप में क्षात्रिय का स्वभाव है और दूसरे क्षमा शान्ति इत्यादि ब्राह्मणोचित्त गुण भी वर्तमान हैं।

इसके अतिरिक्त सम्पूर्ण उत्तमोत्तम शुभ गुणों से युक्त हो, हे मुनीश्वर! एक आपही ऐसे हैं जो क्षत्रिय से ब्राह्मण हुए हैं, ऐसी किसी की सामर्थ्य नहीं देखा। आपका शरीर प्रकाशमान् दीखता है

और जिस मार्ग से आप देखते हुए आये हो, वहाँ से अमृत की वृष्टि करते हुये आये हो, ऐसा दृष्टि आता है, हे मुनीश्वर ! आपका दर्शन करके मुझको बड़ा लाभ हुआ है ।

हे भारद्वाज ! इस प्रकार राजा दशरथजी ने विश्वामित्रजी से कहा। तब वशिष्ठजी आकर विश्वामित्र को गले लगाकर मिले, तथा और भी जो मण्डलेश्वर राजा थे, सबने उनको अनेक प्रणाम किये, इस प्रकार जब सब मिल चुके, तब विश्वामित्रजी को राजा दशरथजी अपने गृह में ले आये, और राजा ने सिंहासन पर लाकर बैठाया, और वशिष्ठ, बामदेव को भी बैठाया, तब राजा दशरथ ने विश्वामित्रजी का पूजन किया और अर्घ्य पादार्चन करके प्रदक्षिणा करी फिर वशिष्ठजी ने विश्वामित्रजी का पूजन किया, और विश्वामित्रजी ने वशिष्ठजी का पूजन किया। इस प्रकार अन्यान्य पूजन

करके सब लोग अपने अपने आसन पर यथा योग्य विराजमान हुए।

तब राजा दशरथजी बोले—हे भगवान! जिस प्रकार महापुरुष को अमृत की प्राप्ति हो जाय और जन्म के अन्धे को नेत्र, निर्धन को चिन्तामणि और घर वालों को मृतक बान्धव की प्राप्ति होने से जिस प्रकार आनन्द होता है तैसे ही आज आपका दर्शन करके मैं आनन्द को प्राप्त हुआ हूँ। हे मुनीश्वर! अब आपका पधारना जिस लिये हुआ है, सो कृपा करके कहिये। आप जो आज्ञा करेंगे, उसको पूर्ण हुआ ही समझिये। क्योंकि ऐसा कोई पदार्थ नहीं है जो आपको नहीं दे सकूँ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे वै० प्रा० भाषाटीकायां विश्वामित्रागमन वर्णनो नाम तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

चतुर्थः सर्गः

(अथ विश्वामित्रेच्छा वर्णनं)

वाल्मीकिजी बोले—हे भारद्वाज ! जब इस प्रकार राजा दशरथजी ने कहा, तब मुनि शार्दूल विश्वामित्रजी बहुत प्रसन्न हुये और उनके रोम खड़े हो गए। अनन्तर जैसे पूर्णमासी के चन्द्रमा को देखकर क्षीरसागर प्रसन्न होता है, तैसे ही प्रसन्न होकर कहने लगे, हे राजशार्दुल ! आप धन्य हैं, ऐसा क्यों न होवे। क्योंकि आप भी अति श्रेष्ठ गुण विद्यमान् हैं अर्थात् एक तो आप रघुवंशी हैं और दूसरे महर्षि वशिष्ठजी आपके गुरु हैं उनकी आज्ञा में चलते हो। अतएव मेरा जो प्रयोजन है और जिस लिये मैं आया हूँ—सो आपके निकट प्रकट करता हूँ—सुनिये मैंने दशरथ यज्ञ का आरम्भ किया है—सो जिस समय यज्ञ आरम्भ करता हूँ उसी समय खरदूषण नामक राक्षस आकर उसको विध्वंश कर देता है। यदि कहीं दूसरे

स्थान में जाकर यज्ञ करता हूँ तो वे राक्षस वहाँ भी जाकर यज्ञ को ष्ट करते हैं अर्थात् यज्ञ में रुधिर मांस
स्थान में जाकर यज्ञ करता हूँ तो वे राक्षस वहाँ भी जाकर यज्ञ को भ्रष्ट करते हैं अर्थात् यज्ञ में रुधिर मांस
और अस्थि इत्यादि डाल जाते हैं इससे वह स्थान यज्ञ के योग्य नहीं रहता। उन्हीं का नाश करने के निमित्त मैं आपके पास आया हूँ। कदाचित् यह कहोगे कि उनका नाश करने में तो आप भी समर्थ हो, सो हे राजन्! मैंने राजस यज्ञ का आरम्भ किया है, उसका अंग क्षमा है यदि मैं शाप दे दूँ तो वह भस्म हो जावे परन्तु शाप क्रोध के बिना हो नहीं सकता और क्रोध से यज्ञ निष्फल हो जाता है। उधर यदि मैं चुप रहता हूँ, तो वह राक्षस यज्ञ में अपवित्र वस्तु डाल जाते हैं। अतएव मैं आपकी शरण में आया हूँ। मेरा कार्य कर दीजिए। हे महाराज! अपने कमल नयन काकपक्षधारी, राम नामक पुत्र को मेरे साथ भेज दीजिए! यह वहाँ जाकर

राक्षसों का नाश करेंगे। तबही मेरा यज्ञ सफल होगा। आप इस बातका सोच नहीं करना कि मेरा पुत्र बालक है, नहीं वह इन्द्र के समान शूर वीर है, इसके समीप वह राक्षस कदापि ठहर नहीं सकते अर्थात् जैसे सिंह के सन्मुख मृग नहीं ठहर सकता, तैसे ही आपके पुत्र के सन्मुख राक्षस नहीं ठहरेंगे। इस वास्ते मेरे साथ इसको कर दीजिये, ऐसा होने से आपका धर्म और यश रहेगा तथा मेरा भी काम हो जायगा। इसमें सन्देह नहीं करना। हे राजन्! ऐसा पदार्थ त्रिलोक में कोई नहीं है जिसमें राम का हाथ न होवे? इसीसे आपके पुत्र को लिये जाता हूँ। यह मेरे हाथसे रक्षित रहेगा और इसको कोई विघ्न मैं नहीं होने दूँगा और पुत्र क्या पदार्थ है सो मैं जानता हूँ और वशिष्ठजी भी जानते हैं और जो व्यक्ति ज्ञानवान त्रिकालदर्शी होगा सो भी इसको जानता होगा। दूसरे किसी की सामर्थ्य नहीं है, जो इसको जान सकै। अतएव इसको आप मेरे साथ कीजिये जिसमें मेरे कार्य की सिद्धि होवे।

हे राजन् ! समय पर जो कार्य होता है, वह थोड़ा भी बहुत सिद्धि पाता है। जैसे द्वितीया के चन्द्रमा को देखकर एक तन्तु का दान किया होवे, सो भी बहुत है, पीछे वस्त्र का दान किये से भी वैसा कार्य सिद्ध नहीं होता। तैसेही समय पर थोड़ा कार्य भी बहुत सिद्धि को देता है। और समय विना बहुत कार्य भी थोड़े फल को देता है। अतएव अब आप मेरे साथ श्रीरामचन्द्रजी को कर दीजिये। क्योंकि महाबलवान् खरदूषण नामक राक्षस मेरे यज्ञ को विध्वंश किया करता है। श्रीरामचन्द्रजी के वहाँ जाने पर वह इनके सामने नहीं ठहर सकेगा; बल्कि इनके तेज से उसका तेज अस्त हो जायगा। जैसे सूर्य के तेज से तारागण का प्रकाश छिप जाता है, तैसे ही रामचन्द्रजी का दर्शन करके वह राक्षस स्थित न रहेंगे अथवा जैसे गरुड़ के सामने सर्प नहीं ठहर सकते हैं, तैसे ही श्रीरामजी के आगे राक्षस ठहर नहीं सकेंगे, बल्कि देखकर भाग जावेंगे। इस वास्ते श्री-

रामचन्द्र को मेरे साथ कीजिये, जो मेरा कार्य सिद्ध होवे और आपका धर्म भी रहे, श्रीरामचन्द्र के निमित्त सन्देह मत करना, किसी राक्षस की सामर्थ्य नहीं है जो रामजी के निकट आवे और फिर मैं भी तो रक्षा करूँगा। वाल्मीकिजी बोले, हे भारद्वाज ! जब विश्वामित्रजी ने इस प्रकार कहा, तब राजा दशरथ-जी ने उसको सुनकर कोई उत्तर नहीं दिया और वे पृथ्वी पर गिर कर अचेत से हो गये तथा एक मुहूर्त तक इसी अवस्था में पड़े रहे।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे वैराग्य प्रकरणे कन्हैयालाल मुरा-दाबाद निवासी मिश्रकृत भाषा टीकायां वर्णनं नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥
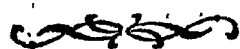
पञ्चम सर्गः

(अथ दशरथोक्ति वर्णनम्)

श्रीवाल्मीकिजी बोले—हे भारद्वाज ! एक मुहूर्त पीछे महाराज दशरथजी उठे और महा दीन के समान हो गये तथा महामोह को प्राप्त हो धैर्य्य रहित चित्त से कहने लगे । दशथरजी ने कहा—हे मुनीश्वर ! यह आपने क्या कह डाला ? मेरा राम तो अभी अल्प वयस्क कुमार है । शास्त्र विद्या भी बिल्कुल नहीं जानता । पुष्पशय्या पर शयन करता है । भला वह युद्ध करने की सार क्या जाने ? हे नाथ ! वह तो बालकों में खेलना या रनवास में बैठना जानता है और कदाचित् रणभूमि तो उसने अबतक देखी भी नहीं है न भृकुटी चढ़ाकर कभी युद्ध ही किया है। कमल की नाईं जिसके हाथ हैं तथा कोमल जिसकाशरीरहै वह मेरा राम राक्षसके साथ युद्ध कैसे करेगा ? कहीं पत्थर और कमल का भी युद्ध

होता सुना है ? राम का वपु कमल के समान कोमल है और वे राक्षस महाक्रूर पत्थर की नाईं हैं अतएव उनके साथ युद्ध कैसे होगा ?

हे मुनीश्वर ! अब मेरी अवस्था नौ हजार वर्ष की होगई है। दशवाँ सहस्र लगा है अर्थात् मैं बृद्ध हुआ हूँ। इस वृद्धावस्था में मेरे चार पुत्र उत्पन्न हुए हैं इस पर भी चारों के बीच कमल नयन राम अब षोड़श वर्ष का हुआ है और मुझको बहुत प्यारा है वल्कि मेरा प्राण है। उसके बिना मैं एक क्षण भी जीवित भी नहीं रह सकता। जो तुम इसको ले जावोगे तो मेरा प्राण निकल जावेगा। मैं मृतक हो जाऊँगा।

हे मुनीश्वर ! केवल मेरा ही ऐसा स्नेह नहीं है, किन्तु इसके भाई लक्ष्मण भरत, शत्रुघ्न और उसकी माता सबको राम को अपना जीवनधार समझते हैं। यदि आप उसको ले जायँगे, तो हे मुनिराज ! हम में से कोई भी जीवित नहीं रहेगा। यदि

वियोग कराकर आप हम लोगों को मारने की इच्छा से ही आए हों, तो इनको ले जाइये—अन्यथा हे मुनिराज ! मेरे चित्त में प्रति क्षण राम पूर रहा है, तो आपही बताइये कि मैं इसको कैसे दे सकता हूँ ? जिस प्रकार चन्द्रमा को देखकर चकोर, मेघ की बूँद को देखकर पपीहा और पूर्णमासी के चन्द्रमा को देखकर समुद्र प्रसन्न होता है, तैसे ही मैं राम को देखकर प्रसन्न होता हूँ। तब राम के वियोग से मेरा जीना कैसे होगा ? हे मुनिराज ! मेरे को राम से अधिक स्त्री भी प्रिय नहीं और धन भी ऐसा प्रिय नहीं न राज्य ही ऐसा प्रिय है। सारांश कोई पदार्थ भी मुझको राम के समान प्यारा नहीं है यह सत्य ही जानिये। हे मुनीश्वर ! आपके बचन सुनके मुझको बड़ा शोक हो रहा है, मेरा बड़ा अभाग्य है जो आप इस निमित्त पधारे हैं। आप के बचन सुनकर जैसे कमलके ऊपर बरफ की वर्षा होवे, ऐसी ही व्यथा मुझे हो रही है और बरफ की

वर्षा से जैसे कमल नष्ट हो जाते हैं तैसे ही आपके वचन से मेरी नष्टता हो जावेगी। जैसे बड़ा मेघ चढ़ आवे, और उसमें बड़ा पवन चले तब मेघ की गंभीरता का अभाव हो जाता है, तैसे ही आपके वचन से मेरी प्रसन्नता का अभाव हो जाता है। जैसे वसंत ऋतु की मंजरी ज्येष्ठ, आषाढ़ में सूख जाती है तैसे ही आपके वचन सुन कर मेरे हृदय का उत्साह भस्म हो जाता है। हे मुनिनाथ! इन सब कारणों से राम को तो मैं दे नहीं सकता—किन्तु हाँ मेरे पास एक अक्षौहिणी सेना ऐसी है जिसको शस्त्र विद्या सब आती है और बड़ी शूरवीर है, यदि आप चाहें तो हाथी–घोड़े और पैदलों वाली मेरी चतुरंगिणी सेना को साथ ले जा सकते हैं अथवा मुझको आज्ञा दें तो मैं भी साथ चलकर उन दुष्टों का नाश कर सकता हूँ—किन्तु एक व्यक्ति के साथ मैं युद्ध नहीं कर सकूँगा। अर्थात् यदि कदाचित यज्ञ खण्डन करनेहारा कुबेर का भाई और विश्रवा

का पुत्र रावण हुआ, तो मैं उसके साथ युद्ध करने को समर्थ नहीं हूँ। हे मुनीश्वर! पहिले मेरे शरीर में महान् बल था, वैसा बल त्रिभुवन में किसी को न होगा। यदि कोई मुझे मारने आता तो मैं उसको ही यमलोक पहुँचा देता। अब मेरा वैसा पराक्रम नहीं, बल्कि मैं रावण से काँपता हूँ और सब राक्षस उसके वशीभूत रहते हैं, सारांश अब किस की शक्ति है जो रावण के साथ युद्ध करे? वर्तमान काल में वह बड़ा शूरवीर है।

हे मुनीश्वर! जब उन राक्षसों से लड़ने का मुझ में ही साहस नहीं है, तो फिर राजकुमार राम उनसे कैसे युद्ध कर सकेगा? इसके अतिरिक्त वह आजकल रोगाक्रान्त भी हो रहा है। उसको किसी ऐसी उत्कट चिन्ता ने घर दबाया है कि जिससे वह बड़ा ही दुर्बल हो रहा है। रनवास में अलग बैठा रहता है, खाना पीना इत्यादि जो राजकुमारों की चेष्टा है; सो सब उसको बिरस हो गई है और मैं

नहीं जानता कि उसको क्या दुःख प्राप्त हुआ है? जैसे कमल सूख के पीत वर्ण हो जाता है, तैसा ही उसका मुख पीला हो गया है। अस्तु उसको युद्ध करने की शक्ति नहीं और फिर जिसने अपने स्थान से बाहर की पृथ्वी तक भी नहीं देखी है, वह भला युद्ध कैसे करेगा? मैं फिर कहता हूँ कि हे मुनीश्वर! वह युद्ध करने को कदापि समर्थ नहीं है और हमारा प्राण वही है—यदि उसका वियोग होगा तो हमारा जीना न हो सकेगा वरन् जैसे जलबिना मीन नहीं जीती तैसे ही राम के विना हम कैसे जीवेंगे? और यदि आप राक्षसों के युद्ध निमित्त कहो तो हम आप के साथ चलें, किन्तु राम तो किसी प्रकार भी युद्ध करने के योग्य नहीं है।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे वै० प्र० मुरादाबादनिवासी कन्हैयालाल मिश्रकृत भाषाटीकायां दशरथोक्ति वर्णनं नाम पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

(षष्ठ सर्गः)

[अथ रामसमाज वर्णनम्]

वाल्मीकिजी बोले—हे भारद्वाज ! जब इस प्रकार राजा दशरथजी ने कहा तब महा दीन जैसे मोह सहित अधैर्यवान् वचन सुनकर विश्वामित्रजी क्रोध साहित कहने लगे। विश्वामित्रजी ने कहा—हे राजन् ! आप अपने धर्म को स्मरण कीजिये। आपने यह प्रतिज्ञा करी है कि आपका जो अर्थ होगा, सो मैं पूर्ण करूँगा। और उसको पूर्ण हुआ ही जानना। आप अपने धर्म को त्यागते हैं और सिंह होकर भी मृगा की नाईं भागते हैं, तो भागिये, परन्तु आगे रघुवंश में ऐसा कोई नहीं हुआ। जैसे चन्द्रमा के मंडल में शीतलता होती है और उसमें से अग्नि नहीं होती। अब जो आप करते हैं सो कीजिये, हम चले जायँगे क्योंकि सूने घर से मनुष्य खाली ही जाता है। परन्तु यह आपको उचित न था, जो हो आप सुख से राज्य करते रहो, पीछे जो कुछ होगा,

सो हम समझ लेंगे। यदि अपने धर्म को त्यागने की ही इच्छा है, तो आप त्याग दीजिये।

वाल्मीकिजी बोले——हे भारद्वाज! इस प्रकार जब पूर्ण क्रोध में भर कर विश्वासित्रजी ने कहा, तब इनके क्रोध से पचास कोटि पृथ्वी काँपने लगी और इन्द्रादिक देवता भी भय को प्राप्त हुए कि यह क्या हुआ? तब वशिष्ठजी बोले——

वशिष्ठजी ने कहा—हे राजा! जब कि इक्ष्वाकु के कुल में सब ही परमार्थी हुए हैं, तब फिर आप अपने धर्म को क्यों त्यागते हैं? मेरे सामने अभी आप अपनी यह प्रतिज्ञा कर चुके हैं कि जो आपका अर्थ होगा; उसको मैं अवश्य ही पूर्ण करूँगा। तो फिर आप अब अपने बचन से क्यों फिरते हैं? हम कहते हैं——श्रीरामचन्द्रजी को इनके साथ कीजिये यही आपके पुत्रकी रक्षा करेंगे। जैसे सर्प से अमृत की रक्षा गरुड करता है, तैसे ही आपके पुत्र की रक्षा यह करेंगे। अब यह कैसे

पुरुष हैं—सो भी सुनिये। इनके समान वल किसी को नहीं। यह साक्षात धर्म की मूर्ति हैं। ऐसे और तपस्वी कोई नहीं है—सारांश यह तपकी खानि हैं। इनके समान कोई बुद्धिमान् और शूरवीर नहीं है। और अस्त्र विद्या में भी यह अद्वितीय हैं—क्योंकि दक्ष प्रजापति को दो ही पुत्री थीं—एक जया और दूसरी सुभगा। सो ये ऋषि को दी है—दैत्यों को मारने के निमित्त जयासे इन्होंने पाँच सौ पुत्र उत्पन्न किये थे और सुभगा के गर्भ से भी पाँच सौ पुत्र जन्मे थे, दैत्यों का नाश करना ही इन सबकी उत्पत्ति का कारण था सो स्त्रियाँ इनके आज्ञा के अनुसार मूर्ति धारण करके स्थिर हुई हैं अतएव इन को जीतने में कोई समर्थ नहीं है। जिसका साथी विश्वामित्र होवें वह त्रिलोकी में किस से डर सकता है? इस वास्ते इनके साथ आप अपने पुत्र को कर दीजिये और संशय मत कीजिये। ऐसी किसी की सामर्थ्य नहीं जो इनके होते हुए आपके पुत्रकी ओर

आँख उठा कर भी देख सके ! सारांश जिस प्रकार सूर्य के उदय होने से अन्धकार का नाश हो जाता है तैसे ही विश्वामित्रजी के अमृतमयी दृष्टि से देखने पर दुःख का नाश हो जाता है। अतएव हे राजन् ! इनके साथ आपके पुत्र को खेद कैसे हो सकता है। आप इक्ष्वाक कुल के हैं और दशरथ आपका नाम है। सो यदि आप जैसे सत्यवादी अपने धर्म में स्थित न रहें तो फिर साधारण मनुष्यों से धर्म की पालन कैसे होगी क्योंकि श्रेष्ठ पुरुष जैसी चेष्टा करते हैं, तिसी के अनुसार अन्य जीव भी करते हैं अस्तु जो आप सरीखे अपने बचन को पालन नहीं करेंगे, तब कोई दूसरा कैसे करेगा ? और फिर आपके कुल में ऐसे वचन से फिरना भी आज तक नहीं हुआ। अतएव आप अपने धर्म को नहीं त्यागिये और अपने पुत्र को इनके साथ कर दीजिये। चाहे आप उनके वियोग से शोकवान भले होवें, तो भी नहीं मत कहिये। क्योंकि चाहे मूर्तिधारी काल ही:

आकर क्यों न स्थित होवे, तो भी विश्वामित्रजी के विद्यमान् होते हुए पुत्र को कुछ नहीं हो सकता। अस्तु आप शोक मत कीजिये और अपने पुत्र को इनके साथ कर दीजिये यदि न दोगे; तो तुम्हारा दो प्रकार का धन नष्ट होगा अर्थात् एक धन तो यह है कि जो आपने कूप बावरी ताली आदि बनवाये हैं तिनका सारा पुण्य नष्ट हो जायगा और दूसरा तुम्हारा गृह निरर्थक हो जावेगा। इस वास्ते शोग तथा मोहको त्यागिये और अपने धर्म का स्मरण कीजिये ऐंसा होने पर आपके सब कार्यों की सिद्धी होगी।

क्योंकि हे राजन् ! जब आपको ऐसा ही करना था, तब पहले ही बिचार कर कहना था, कारण बिना बिचारे कह बैठने से उसका परिणाम दुःखदायक ही होता है, तथापि अभी कुछ नहीं बिगड़ा है आप श्रीरामचन्द्रजी को बेखटके इन्हें सौंप दीजिये।

वाल्मीकिजी बोले—हे भारद्वाज ! जब इस प्रकार वशिष्ठजी ने कहा, तब राजा दशरथजी धैर्य्य-वान् हो अपने सर्वश्रेष्ठ भृत्य को बुलाकर कहने लगे हे महाबाहो ! तुम रामको ले आओ। तब महाराज की आज्ञानुसार इनके साथ एक चाकर जो अन्दर बाहर का जाने वाला था और छल से रहित था, सो श्रीरामचन्द्रजी के निकट गया और एक मुहूर्त पीछे लौटा और आकर कहने लगा कि हे देव ! श्रीरामचन्द्रजी बड़ी चिन्ता में निमग्न हैं, मैंने उनसे बारम्बार कहा कि आप चलिये, महाराज बुला रहे हैं, तब वे बोले कि अच्छा चलते हैं, बस यही कह कर बारम्बार चुप होजाते हैं। हे भारद्वाज ! जब राजा ने इस प्रकार सुना, तब आज्ञा दी कि राम के मन्त्री और टहलुए सबको बुलाओ। आज्ञा पाते ही सब उपस्थित हुए तब राजा ने आदर पूर्वक कोमल सुन्दर बचन और युक्तियों द्वारा कहा कि राम के प्यारो ! राम की क्या दशा है ? और वह दशा क्यों

कर हुई ? सो सब संक्षेप से कहो। मन्त्रियों ने कहा हे देव ! हम क्या कहैं ! जो दृष्टि में आते हैं, सो सब आकार और प्राण देखने मात्र हैं, परन्तु हैं सब मृतक क्योंकि हमारे स्वामी रामचन्द्रजी बड़ी चिन्ता को प्राप्त हुए हैं। हे राजन् ! जिस दिन से रघुनाथजी तीर्थ करके आये हैं उसी दिन से चिंता को प्राप्त हुए हैं, जब हम लोग उनके लिये उत्तम भोजन पान करने का पदार्थ तथा पहरने का वस्त्र और देखने का पदार्थ ले जाते हैं तो वे उन सुखदाई पदार्थों को देखकर किसी प्रकार से प्रसन्न हुए तो हुए परन्तु हमने प्रसन्न होते नहीं देखा। वे तो किसी ऐसी चिंता के विषय में लीन हैं कि किसी ओर देखते ही नहीं और जो देखते हैं, तो क्रोध करते हैं तथा सुखदायी पदार्थों का निरादर करते हैं अन्त-पुर में इनकी माता नाना प्रकार के हरि तथा मणियों के भूषण देती हैं, तो उनको फेंक देते हैं। अथवा किसी निर्धन को दे देते हैं, प्रसन्न किसी पदार्थ से

नहीं होते, सुन्दर स्त्रियाँ विद्यमान् खड़ी रहती हैं नाना प्रकार के भूषण सहित महा मोह करने हारी स्त्रियाँ निकट रह कर हाव भाव कटाक्ष करती हैं तथा प्रसन्न करने की चेष्टा करती हैं, तो वे उन सब बातों को भी विषवत् जानते हैं और उनकी ओर देखते भी नहीं जैसे पपैया दूसरे जल को देखते भी नहीं। यदि कभी अकस्मात् रनवास में जा निकलते हैं तब उनको देख कर क्रोध करते हैं। हे राजन्! दूसरी कोई चीज उनको भली नहीं लगती। सारांश किसी बड़ी चिंता में मग्न हैं और तृप्त हो कर भोजन नहीं करते, बल्कि क्षुधावन्त ही रहते हैं न कुछ पहरने खाने पीने की इच्छा रखते हैं, न राज्य की इच्छा है न किसी इन्द्रिय के ही सुखकी इच्छा है केवल महा उन्मत्त की नाईं बैठे रहते हैं और जब कोई सुखदायी पदार्थ फूलादिक ले जाते हैं, तब वे क्रोध करते हैं। अस्तु हम नहीं जानते कि उनको क्या चिंता उत्पन्न हुई है? एक कोठरी में

पद्मासन मार कर तथा हाथ पर मुख धरे बैठे रहते हैं जब कोई बड़ा मंत्री आकर पूछता है, तब रात को कहते हैं कि आप लोग जिसको सम्पदा मानते हैं वही आपदा है।

जिसको सम्पदा जानते हो सो सब मिथ्या है इन्हीं में सब डूबते हैं, ये सब मृगतृष्णा के जलवत् हैं तिनको सत्य समझ कर मूर्ख हरिण के समान दौड़ते हैं और अंत में दुःख पाते हैं। हे राजन्! कदाचित् बोलते हैं, तो ऐसे बोलते हैं कि मानो हृदय में कोई बड़ा आघात लगा है। कोई पदार्थ उनको सुखदायी नहीं भासता है और यदि हम लोग कभी हँसी की बात करते हैं, तो वह हँसते भी नहीं हैं। जिस पदार्थ को प्रीति संयुक्त लेते थे, तिस पदार्थ को अब फेंक देते हैं और दिन दिन दुबले होते जाते हैं एवं जैसे मेघ की बूँद से पर्वत चलायमान् नहीं होते तैसे ही आप स्त्रियों की बातों से चलायमान् नहीं होते और जो बोलते हैं तो ऐसे

बोलते हैं कि न राज्य सत्य है, न भोग सत्य है और न इस जगह सत्य है न भ्रात सत्य है न मित्र सत्य है मिथ्या पदार्थ के निमित्त मूर्ख बड़े यत्न करते हैं। जिनको सत्य जानते हैं और सुखदायक जानते हैं सो बंधन का कारण है—और कहाँ तक कहें जो कोई इनके पास राजा अथवा पंडित जाता है, उसको देख कर कहते हैं कि यह पशु हैं और आशा रूपी फाँसी से बँधे हुए हैं।

हे राजन् ! जो कुछ भोग्य पदार्थ है, तिनको देख कर उनका चित्त प्रसन्न नहीं होता, वरन् देख कर क्रोध युक्त होते हैं।

जैसे पपीहा मारवाड़ में आता है और मेघकी बूँद को नहीं देख कर खेदवान् होता है, तैसे ही श्रीरामचंद्रजी विषय से भी खेदवान् होते हैं। हे राजन् ! इससे हम जानते हैं कि इनको परम पद पाने की इच्छा हुई है। परंतु कदाचित् सुख से सुना नहीं है और त्याग का अभिमान भी कदाचित् नहीं

सुना है। जब कभी गाते और बोलते हैं, तब ऐसा कहते हैं कि हाय ! हाय ! मैं अनाथ माना गया हूँ अरे मूर्खों ! तुम संसार समुद्र में क्यों डूबते हो ? यह संसार परम अनर्थ का कारण है। इसमे सुख कदाचित् भी नहीं है। अतएव छूटने का उपाय करना चाहिये। हे राजन् ! ऐसा भी कदाचित् हम सुनते हैं किसी के साथ वे बोलते नहीं न हँसते न मंत्री के साथ बोलते हैं, न अपने अंतःपुर की स्त्रियों के साथ बातें करते और न माता के साथ बोलते हैं-सारांश किसी परम चिंता में मग्न हैं और किसी पदार्थ से आश्चर्यवान् नहीं होते। यदि कोई कहै कि आकाश में बाग लगा और उसमें फूल फले हैं तिनको मैं ले आया हूँ तो ऐसा सुन कर भी वे कोई अचम्भा करते प्रतीत नहीं होते हैं—वरन् सब भ्रम मात्र समझते हैं। न किसी पदार्थ से उनको हर्ष है न किसी पदार्थ से शोक होता है—तात्पर्य किसी बड़ी चिंता में मग्न हैं, सो हमको कोई उनकी चिंता

निवारण करने में समर्थ नहीं दीखता है क्योंकि वह जो चिंता के समुद्र में मग्न हैं। हे राजन्! अब हमको यह चिंता लग रही है कि उन्हें न खानेकी ही इच्छा है न पहरने की, न बोलने और न देखने की ही इच्छा है—न किसी कर्म करने की इच्छा है—इससे वह कहीं मृतक न हो जावें बस यही चिंता है और जो कोई कहता है कि आप चक्रवर्ती राजा हैं आपकी बड़ी आयु हो और आप बड़े सुख को प्राप्त हों तो ऐसा सुनकर वे महा कठोर वचन बोलते हैं।

हे राजन्! केवल श्रीरामचंद्रजी को ही ऐसी चिंता नहीं है बल्कि लक्ष्मण और शत्रुघ्न को भी ऐसी ही चिंता लग रही है। श्रीरामचंद्रजी को देख कर यदि कोई उनकी चिंता दूर करमे में समर्थ होवै तो उपाय कीजिये नहीं तो उनका परिणाम शोच-नीय तथा बिपज्जनक होगा। क्योंकि किसी पदार्थ की इच्छा उनको नहीं रहती है। हे राजन्! हम

और क्या कहें आपके वे पुत्र तो अतीथ से हो रहे हैं। एक वस्त्र उपरना ओढ़े बैठे हैं। अतएव वही उपाय कीजिये, जिससे उनकी चिंता निवृत्त होवे। विश्वामित्रजी बोले, हे साधु ! यदि सत्य ही श्रीरामचंद्रजी की यह अवस्था हो रही है तो उनको हमारे पास बुलाकर लाओ। हम उनका कष्ट यथा सम्भव शीघ्र ही निवारण करेंगे।

हे राजा दशरथ ! आप धन्य हो कि आपके पुत्र विवेक और वैराग्य को प्राप्त हुए। हे राजन् ! हम लोग जो बैठे हैं, सो आपके पुत्र को परमपद की प्राप्ति करावेंगे, अभी सब दुःख उनके मिट जायेंगे। हम वशिष्ठादि एक युक्ति द्वारा उनको उपदेश करैंगे, जिससे उन्हें आत्मपद की प्राप्ति होगी। उस काल आपके उस पुत्र की वह दशा होगी कि वे लोष्ठ और पत्थर तथा सुवर्ण को एक समान समझें, और जो कुछ आपके क्षात्रिय की प्रकृति का आचरण है सो करेंगे। तथा हृदय में प्रेम से

उदासी होंगे। इस वास्ते हे राजन्! उनके द्वारा आपका कुल कृतकृत्य होगा। अतएव श्रीरामचन्द्र-जी को यहाँ बुलाइये।

वाल्मीकिजी बोले—हे भारद्वाज! इस प्रकार मुनीन्द्र के वचन सुनकर राजा दशरथजी ने मंत्री और नौकर को बुलाकर कहा कि भृत्यश्रेष्ठ! तुम राम लक्ष्मण भरत और शत्रुघ्न को अपने साथ ही ले आओ। जैसे हारिनी का हारिण ले आते हैं तैसे ही ले आओ। जब राजा दशरथजी ने कहा, तब मंत्री और भृत्यों ने श्रीरामचन्द्रजी के पास जाकर कहा कि हे स्वामी! आपको आपके पिताजी बुलाते हैं—यह सुनते ही श्रीरामचन्द्रजी ने आकर पिताके चरणों में प्रणाम किया। फिर खड़े होकर उन्होंने देखा कि राजा दशरथजी बशिष्ठजी और विश्वा-मित्रजी के मस्तक पर चमर हो रहे हैं। बड़े बड़े मंडलेश्वर बैठे हैं, उन्होंने भी श्रीरामचन्द्रजी को देखा कि शरीर से बड़े कृश हो रहे हैं। अनन्तर

जैसे महादेवजी ने स्वामी कार्तिक को आते हुआ देखा था तैसे ही महाराज दशरथजी ने अपने बड़े पुत्र श्रीरामचन्द्रजी को आते हुये देखा । इसके पीछे श्रीरामचन्द्रजी ने गुरु वशिष्ठजी तथा सभा में बैठे हुए सब ब्राह्मणों को भी प्रणाम किया। फिर जो बड़े २ मंडलेश्वर बैठे थे उन्होंने उठकर श्रीरामचन्द्रजी को प्रणाम किया । अनन्तर राजा दशरथजी ने श्रीरामचन्द्रजी को गोदमें बैठाया और देखके उनका सिर सूँघा फिर अत्यन्त प्रेम से परम पुलकित होकर श्रीरामचन्द्रजी से कहा—हे पुत्र ! केवल विरक्तता के द्वारा ही परम पद की प्राप्ति नहीं होती है—वरन् गुरु वशिष्ठजी के उपदेश की युक्ति से परमपद की प्राप्ति होगी।

वशिष्ठजी ने कहा—हे राम ! आप धन्य हैं और बड़े शूरमा हैं जो विषय रूपी शत्रुओं को आपने जीता है क्योंकि विषय अजित और दुष्ट हैं। उनको आपने जीत लिया अतएव आप धन्य हैं !

धन्य हैं ! विश्वामित्रजी ने कहा—हे कमल नयन राम ! अपने अनन्तर की चपलता को त्याग कर जो कुछ आपका आशय हो, सो प्रगट करके कहिये। हे राम ! यह जो आप को मोह प्राप्त हुआ है वह कैसा है ? सो कहिये और अब जो कुछ आपको वांछित हो सो बताइये। हम आपको उसी पद में प्राप्त करेंगे जिससे दुःख कदाचित् नहीं हो ? जैसे आकाश को चूहा नहीं काट सकता है, तैसेही आपको कभी पीड़ा न होगी। बल्कि आपके सब दुःखों का नाश हो जायगा। अतएव आप संशय न करके अपना सब मनोर्थ स्पष्टतया हमसे कहिये।

वाल्मीकिजी बोले—हे भारद्वाज ! जब ऐसे विश्वामित्रजी ने कहा—तब उसको सुनकर श्रीरामचन्द्रजी बहुत प्रसन्न हुए और शोक को त्याग दिया। अथवा जैसे मेघ को देख मोर प्रसन्न होता है, तैसे-ही विश्वामित्रजी के वचन सुनकर श्रीरामचन्द्रजी प्रसन्न हुए और अपने हृदय में दृढ़ निश्चय कर

लिया कि अब मुझको उस परमपद की प्राप्ति होगी जिसकी इच्छा है।

इति श्री योगवाशिष्ठे वै० प्र० कन्हैयालाल मिश्र मुरादाबादकृत भाषाटीकायां रामसमाज वर्णन नाम षष्ठःसर्गः॥६॥

सप्तमः सर्गः

[अथ रामेण वैराग्य वर्णनम्]

वाल्मीकिजी बोले—हे भारद्वाज! इस प्रकार मुनीश्वर के बचन को सुनकर श्रीरामचन्द्रजी बहुत प्रसन्न होकर बोले।

श्रीरामचन्द्रजी बोले—हे भगवान्! जो वृत्तान्त है सो आपके आगे क्रम से कहता हूँ। इन राजा दशरथजी के घर में मैंने जन्म पाया है फिर क्रम से बड़ा हुआ और यज्ञोपवीत पाया तथा चारों वेद पढ कर ब्रह्मचर्यादि व्रतों का अनुष्ठान किया। इसके

पीछे एक दिन जब मैं विद्यालय से घर आया, तो मेरे मनमें यह लालसा उत्पन्न हुई कि तीर्थ यात्रा करूँ। और फिर देवद्वार में जाकर देवताओं के दर्शन करूँ। निदान मैं पिताजी की आज्ञा लेकर तीर्थ यात्रा को गया और गङ्गा आदि सम्पूर्ण तीर्थों में स्नान किया। फिर शालिग्राम और केदार आदि ठाकुरों के विधि पूर्वक दर्शन किये। तत्पश्चात् यात्रा करके यहाँ लौट आया और फिर उत्साह हुआ। अनन्तर मेरे मन में बिचार आया कि प्रातः काल उठ कर सन्ध्यादिक कर्म करना, फिर भोजन करना, इसी नियम से कार्य करते हुऐ कितने ही दिन व्यतीत हो गए तब मेरे हृदय में एक विचार उत्पन्न हुआ और वह विचार मेरे हृदय को खैंच कर इस प्रकार ले गया कि जैसे नदी के तट पर तृण-बल्ली होते हैं और उनको नदी का प्रवाह खैंच कर ले जाता है। तैसेही हृदय में जो कुछ रजत की आशा रूपी बल्ली थी, सो विचार रूपी प्रवाह उसको

बहा ले गयी तब मैंने जाना कि राज्य से क्या है ? और भोग से क्या है ? तथा जगत् क्या है ? कुछ नहीं, सब भ्रम मात्र है, इसकी वासना मूर्ख रखते हैं, क्योंकि यह स्थावर जङ्गमरूपी जितना कुछ पदार्थ है, सो सब मिथ्या है । हे मुनीश्वर ! जो कुछ पदार्थ है, सो सब मन से उत्पन्न हैं और मन भी भ्रममात्र है, अनहोता मन दुःख दायी हुआ है । मन जिस पदार्थ को सत्य जान कर दौड़ता है और जिसको सुखदायक जानता है, सो मृगतृष्णा के जल के समान है । जैसे मृगतृष्णा को देखकर मृग दौड़ते हैं और दौड़ते दौड़ते थक कर गिर जाते हैं, किन्तु जल नहीं पाते, तैसेही यह जीव सांसारिक पदार्थों को सुखदायी जानकर उनकी ओर दौड़ता है तथा उसको भोगने का यत्न करता है । किन्तु शान्ति को तब भी नहीं पाता, उसी प्रकार हे मुनिसत्तम ! इन्द्रियों के भोग सर्प की नाईं हैं, जिनके काटने (मारने) से यह जीव वारम्बार जन्म

मरण को पाता है, भोग और जगत् सब भ्रम मात्र है। इसमें जो आशा करते हैं सो महामूर्ख हैं। ऐसा विचार कर मैंने स्थिर किया है कि सब आगमापायी हैं। अर्थात् यह सब आते जाते हैं। अतएव जिस पदार्थ का नाश न हो वही पदार्थ प्राप्त करने योग्य है इसी कारण से मैंने भोग का त्याग किया है। हे मुनीश्वर! जितने कुछ सम्पदारूपी पदार्थ भासते हैं सो सब आपदा है इनमें रंचक मात्र भी सुख नहीं है। क्योंकि जब इनका वियोग होता है, तब मन में काँटा सा चुभता है। जब इन्द्रियों को भोग प्राप्त होता है, तब राग द्वेष के द्वारा जलते हैं। और जब नहीं प्राप्त होता तब तृष्णा के द्वारा जलते हैं। अतएव भोग दुःख रूप है। जैसे पत्थर की शिला में छेद नहीं होता, तैसेही भोग रूपी दुःख की शिलामें रंचक भी सुखरूपी छिद्र नहीं होता है।

हे मुनीश्वर! मैं विषय की तृष्णा में बहुत काल से जलता रहा हूँ। जैसे हरे वृक्ष के छिद्र में

रञ्चक अग्नि धरने से धुवाँ होकर थोड़ा २ जलता रहता है, तैसेही भोग रूपी अग्नि के द्वारा मन जलता रहता है। इन विषयों में सुख भी नहीं, किन्तु दुःख बहुत है। इनकी इच्छा करनाही मूर्खता है। जैसे खाईं के ऊपर तृण और पान होता है, तिससे खाईं ढक जाती है और उसको देखकर हरिण कूद पड़ता तथा दुःख पाता है, तैसेही मूर्ख मनुष्य भोग को सुख रूप समझकर भोगने की इच्छा करता है और जब भोगता है, तब जन्म से जन्मान्तर रूपी खाईं में जा पड़ता है और दुःख पाता है।

हे मुनीश्वर! भोगरूपी चोर अज्ञान रूपी रात में लूटने लगता है और आत्मरूपी धन ले जाता है। तब वह उसके वियोग से महा दीन रहता है और जिस भोग के निमित्त यह यत्न करता है, सो दुःख रूप है। शान्ति को प्राप्त नहीं होता और जिस शरीर का अभिमान करके यह यत्न करता है सो शरीर क्षण में भंग होता है और असार है।

जिसको सदा भोग की इच्छा रहती है, सो मूर्ख और जड़ है। इसका बोलना चलना भी ऐसाही है जैसे सूखे बाँस के छिद्र में पवन जाता है और पवन के वेग से शब्द होता है। तैसेही मनुष्य की वासना है, जैसे थका हुआ मनुष्य मारवाड़ के मार्ग की इच्छा नहीं करता तैसेही दुःख जानकर मैं भोग की इच्छा नहीं करता हूँ। रही लक्ष्मी सो यह भी परम अनर्थकारी है। जब तक इसकी प्राप्ति नहीं होती, तबतक इसको प्राप्त करने का यत्न होता है और अनर्थ करके प्राप्त होती है और जब प्राप्ति हुई, तो वह सब गुणों का नाश कर देती है, शीलता, सन्तोष, धर्म, उदारता, कोमलता, वैराग्य, विचार तथा दयादिक गुणों का नाश करती है, जब इस प्रकार गुणों का नाश हुआ, तब सुख कहाँ से हो? बल्कि परम आपदा प्राप्त होती है, अस्तु परम दुःख का कारण जानकर मैंने इसका त्याग किया है।

हे मुनीश्वर! उसमें गुण तब तक ही है जब

तक लक्ष्मी प्राप्त नहीं हुई। किन्तु जब लक्ष्मी की प्राप्ति हुई तब सब गुणों का नाश हो जाता है। जैसे बसन्त ऋतु की मञ्जरी हरी भरी तब तक ही रहती है, जब तक ज्येष्ठ अषाढ़ नहीं आता जब ज्येष्ठ अषाढ़ आ जाता है तब मंजरी जल (झुलस) जाती है, तैसे ही लक्ष्मी की प्राप्ति होने से शुभ गुण जल जाते हैं। यह जीव मधुर वचन तब तक ही बोलता है, जब तक इसको लक्ष्मी की प्राप्ति नहीं होती। जब ही लक्ष्मी की प्राप्ति हुई कि कोम-लता का अभाव होकर वह कठोर हो जाता है। जैसे जल पतला तब तक ही रहता है, जब तक शीत-लता का संयोग नहीं होता। जब शीतलता का संयोग होता है, तब बरफ होकर कठोर दुःख दायक हो जाता है।

हे मुनीश्वर! जो कुछ संपदा है सो सब आ-पदा का मूल है, क्योंकि जब लक्ष्मी की प्राप्ति होती है, तब बड़े सुख को भोगता है और जब उसका

अभाव होता है, तब तृष्णा के मारे जलता है। जन्म से जन्मान्तर को पाता है। लक्ष्मी की इच्छा ही मूर्खता है यह तो क्षणभंगुर है। इससे भोगों की उत्पत्ति होती है और फिर नाश भी हो जाता है, जैसे जल से तरगों की उत्पत्ति होती है और मिट जाती है, बिजली स्थिर नहीं रहती, उसी प्रकार भोग भी स्थिर नहीं रहते और पुरुष में शुभ तब तक ही है, जब तक तृष्णा का स्पर्श नहीं किया। जब सर्प ने स्पर्श किया तब दूध विष रूप हो जाता है।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे वैराग्य प्रकरणे मुरादाबाद निवासी कन्हैयालाल कृत भाषा टीकायां रामेण वैराग्य वर्णन नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

अष्टम सर्गः

(अथ लक्ष्मी नैराश्य वर्णनम्)

श्रीरामचन्द्रजी बोले—हे मुनीश्वर! लक्ष्मी देखने मात्र से सुन्दर है और जब इसकी प्राप्ति हुई, तब यह सद्गुणों का नाश कर देती है, जैसे विषकी

बल्ली देखने मात्र से ही सुन्दर है और स्पर्श किए से मार डालती है तैसे ही लक्ष्मी की प्राप्ति होने पर पुरुष आत्मपद से मृतक होता है और महादीन हो जाता है। जैसे किसी के घर में चिन्तामणि दब रही हो, सो जब तक उसको खोद नहीं लेवे, तब तक दरिद्री रहता है। तैसे ही अज्ञानी पुरुष ज्ञान के बिना महादीन जैसा हो रहता है, आत्मानन्द को पाही नहीं सकता। आत्मानन्द को पा लेने का जो मार्ग है, उसका नाश करने वाली लक्ष्मी है। इस की प्राप्ति से जीव महा अन्धा हो जाता है।

हे मुनीश्वर! जब दीपक प्रज्वलित होता है तब उसका बड़ा प्रकाश दिखाई देता है, किन्तु जब दीपक बुझ जाता है तब प्रकाश का अभाव हो जाता है और काजर की श्यामता रह जाती है। जो बार-म्बार बासना उपजाती थी, सो रहती है, तैसे ही जब इस लक्ष्मी की प्राप्ति होती है, तब बड़े भोग उनको भुगवाती है और तृष्णा रूपी काजर उससे

उपजता रहता है। जब लक्ष्मी का अभाव होता है, तब बासना तृष्णा की श्यामता छोड़ जाती है उस वासना व तृष्णा से अनेक जन्म और मरण को पाता है, शांतिको कभी प्राप्त नहीं होता।

हे मुनीश्वर ! जब जिसको लक्ष्मी की प्राप्ति होती है, तब शांति के उपजाने हारे गुणों का नाश करती है। जैसे जब तक पवन नहीं चलता तब तक मेघ रहता है किन्तु जहाँ पवन चला कि मेघ का अभाव हो जाता है तैसे ही लक्ष्मी की प्राप्ति होने से गुणों का अभाव होता है, और गर्व की उत्पात्ति होती है।

हे मुनीश्वर ! ऐसे शूरमा संसार में दुर्लभ हैं जो अपने मुख से अपना बड़ाई न कहें और समर्थ होने पर भी किसी का तिरस्कार न करें सब में एक सी बुद्धि रक्खें। इसी प्रकार लक्ष्मीवान् हो कर शुभ गुणों से युक्त होना भी दुर्लभ है।

हे मुनीश्वर ! तृष्णा रूपी सर्प को बढ़ाने का स्थान लक्ष्मी रूपी दूध है, सो दूध ही पीते हैं। क्योंकि

पवन रूपी भोग का आहार करते हुए कदाचित् अघाते नहीं और महा मोह रूपी जो उन्मत्त हस्ती है उसकी फिर वे स्नान पर्वत की अटवी रूपी लक्ष्मी रात्रि है और गुण रूप जो सूर्यमुखी कमल है उसके खिलाने को लक्ष्मी सूर्य है और भोग रूपी जो चन्द्र मुखी कमल है उसके लिये लक्ष्मी चन्द्रमा है, तथा वैराग्यरूपी कमलिनी के नाश करने को लक्ष्मी हिम (बरफ) है एवं ज्ञानरूपी चन्द्रमा को आच्छादन करने के लिये यह लक्ष्मी आकाश है। तृष्णारूपी तरङ्ग के लिये लक्ष्मी समुद्र है। भोग रूपी पिशाच के लिये लक्ष्मी कमलिनी और जन्म के दुःख रूपी जल को यह लक्ष्मी मानो खण्ड है।

हे मुनीश्वर! देखने मात्र से तो यह सुन्दर लगती है किन्तु है दुःख का कारण। जैसे खड्ग की धारा देखने मात्र से सुन्दर होती है, किन्तु स्पर्श किये से नाश करती है। तैसे ही यह लक्ष्मी है, जो विचार रूपी मेघ का नाश करने में वायु के समान हो जाती है।

हे मुनिराज ! मैं भली भाँति विचार करके देख चुका कि इस लक्ष्मी में सुख का लेश मात्र भी नहीं वरन् सन्तोष रूपी मेघ को नाश करने के लिये यही लक्ष्मी मानों शरद्काल है, सारांश मनुष्य में गुण तब तक ही दिखाई देते हैं जब तक लक्ष्मी की प्राप्ति नहीं होती। जहाँ लक्ष्मी की प्राप्ति हुई, कि त्योंहीं सारे शुभ गुणों का नाश हो जाता है।

हे मुनीश्वर ! मैंने लक्ष्मी को ऐसी दुःखदायक जानकर ही उसकी इच्छा त्याग दी है। क्योंकि भोग मिथ्या रूपी है और जैसे बिजुली प्रगट होकर फिर छिपजाती है तैसे ही लक्ष्मी भी प्रगट होकर छिप जाती है। जैसे जल है सो हिम है, तैसे ही लक्ष्मी की ज्योति है, अतएव मूर्ख जल के आश्रय से हैं। बस इसको छल रूपी जान कर मैंने त्याग किया है।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे वैराग्य प्रकरणे मुरादाबाद निवासी कन्हैयालाल मिश्र कृत भाषाटीकायां नैराश्य वर्णनं नाम अष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

नवमः सर्गः

(अथ संसार सुख निषेध)

श्रीरामचन्द्रजी बोले जो उस लक्ष्मी को देखकर प्रसन्न होता है, वह मूर्ख है क्योंकि जैसे कमल पत्र पर जल की बूँद नहीं ठहरती। तैसे ही लक्ष्मी चपल तथा क्षणभंगुर है। जैसे जल की तरङ्गं होकर नाश को प्राप्त हो जाती हैं तैसे ही इस लक्ष्मी को मैं समझता हूँ। हे मुनिनाथ! चाहे कोई पवनकी गति को रोक दे, आकाश को चूर्ण कर देवे और बिजुली का चमकना भी चाहे कोई बन्द करने में समर्थ हो जाय, किन्तु लक्ष्मी के मिल जाने पर कोई स्थिर नहीं रह सकता, जैसे खरगोश के सींग से कोई मर नहीं सकता, तथा आरसी के ऊपर जैसे मोती नहीं ठहर सकती और जैसे तरङ्ग की गाँठ कहीं पड़ती है, तैसे ही लक्ष्मी भी स्थिर नहीं रहती है और मिट भी जाती है, लक्ष्मी पाकर जो अमर

होना चाहे; उसको मूर्ख जानना। लक्ष्मी को पाकर जो भोगकी वांछा करता है, वह महा आपदा का पात्र है। उसको जीवन से मरना श्रेष्ठ है। जीने की आशा जो मूर्ख करते हैं वे अपने नाश के निमित्त ही करते हैं। जैसे जो गर्भ धारण करने की इच्छा करती है, सो अपने नाश के निमित्त ही करती है। जो ज्ञानवान् पुरुष हैं और जिनकी परमपद में स्थिति है, जिसके द्वारा वे तृप्त हुए हैं, उनका जीवन सुखके निमित्त है, उनके जीने से और का कार्य भी सिद्ध हो जाता है उनका जीवन चिंतामणि की नाईं श्रेष्ठ है और जिनको सदा भोग की इच्छा रहती है और आत्मपद से विमुख हैं, उनका जीवन किसी सुख के निमित्त नहीं है। वह मनुष्य नहीं गर्दभ हैं और जैसे वृक्ष, पक्षी, पशु का जीवन है, तैसे ही उनका भी जीवन है।

हे मुनीश्वर! जिसने शास्त्र पढ़कर भी प्राप्त करने योग्य पद नहीं पाया, तब वह शास्त्र उसके

पक्ष में भार ही हैं। जहाँ अनेकों भार हैं वहाँ एक पढ़ने का भी है। जो पुरुष पढ़कर विचार चर्चा तो करता है किन्तु उसके सारको ग्रहण नहीं करता, तो वह चर्चा भी भार है।

हे मुनीश्वर! मन अकाश रूप है, सो उस मन में यदि शांति न आई तो मन भी उसका भार है और जो मनुष्य शरीर पाया है, उसका अभिमान नहीं त्यागे, तो वह शरीर उसको भार ही है।

सारांश इस शरीर का जीवन तब ही श्रेष्ठ है, जब आत्मपद को पावै, अन्यथा उसका जीवन व्यर्थ है। किन्तु आत्मपद की प्राति अभ्यास के द्वारा होती है जैसे जल पृथ्वी को खोदने से निकलता है, तैसे ही अभ्यास के द्वारा आत्मपद की प्राप्ति होती है और जो आत्मपद से विमुख होकर आशा की फाँसी में फँसे हैं, वे संसार में भटकते रहते हैं।

हे मुनीश्वर! संसार के तरंग अनेक काल से उत्पन्न होकर नष्ट हो जाते हैं तैसे ही यह लक्ष्मी

भी छणभंगुर है, इसको पाकर जो अभिमान करता है वह मूर्ख है जैसे बिल्ली चूहे को पकड़ने के लिये पड़ी रहती है तैसे ही लच्मी उसको नर्क में डालने के लिये घर में पड़ी रहती है। जैसे अँगुली में जल नहीं ठहरता, तैसे ही लच्मी चली जाती है। ऐसी छणभंगुर लच्मी और शरीर को पाकर जो भोग की तृष्णा करते हैं वे महामूर्ख हैं और मृत्यु के मुख में पड़े हुए जीने की आशा करते हैं। जैसे सर्प के मुख में मेढ़क पड़ता है, सो मच्छर के खाने की इच्छा करता है, सो इससे वह मूर्ख है। तैसे ही यह पुरुष मृत्युके मुखमें पड़ा हुआ भोग की वांछा करता है, सो महा मूर्ख है। युवावस्था नदी के प्रभाव की नाईं चली जाती है, फिर वृद्धावस्था प्राप्त होती है। उसमें महा दुःख प्रगट होता है और शरीर जर्जर हो जाता है। फिर मरता है, इक क्षण भी मृत्यु इसको भूलती नहीं है। वरन् सदा ही देखती रहती है। जैसे महा कामी पुरुष को सुन्दर स्त्री मिलती है, तब उसको

देखने का त्याग नहीं करता, तैसे ही मृत्यु मनुष्य को देखे बिना नहीं रहती है।

हे मुनीश्वर ! मूर्ख पुरुष का जीना दुःख के निमित्त ही है। जैसे वृद्ध मनुष्य का जीना दुःख का कारण है। उसके बहुत जीने से मरना श्रेष्ठ है। यदि पुरुष ने मनुष्य शरीर पाकर आत्मपद पाने का यत्न नहीं किया, तिसने आप ही अपने को नाश किया है और वह आत्म-हत्यारा है।

हे मुनीश्वर यह माया बहुत सुन्दर भासती है, परन्तु आखिर नाश को प्राप्त होती है। जैसे वृक्ष को भीतर से घुन खा जाता है और बाहिर से सुन्दर दीखता है। तैसे ही यह पुरुष बाहिर से सुन्दर दृष्टि आता है और भीतर से इसको तृष्णा खा जाती है। जो पदार्थ को सत्य और सुख रूप जान कर सुख आश्रय के निमित्त सुख के निमित्त आश्रय करता है, सो सुखी नहीं होता जैसे नदी में सर्प को पकड़ के कोई पार उतारना चाहे, सो पार नहीं उतर सकता

है वरन् वह मूर्खता से डूब ही जाता है। तैसे ही जो संसार के पदार्थ को सुख रूप जानकर आश्रय करता है, वह सुख नहीं पाता और संसार समुद्र में डूब ही जाता है।

हे मुनीश्वर! यह संसार इन्द्रधनुषकी नाई है जैसे इन्द्रधनुष बहुत रंग का दृष्टि में आता है, किन्तु उससे अर्थ सिद्धि कुछ नहीं होती, तैसे ही यह संसार भ्रम मात्र है। इसमें सुख की इच्छा रखनी व्यर्थ है। बस इस प्रकार जगत् को मैंने सतरूप जानकर निर्वासना होने की इच्छा करी है।

इति श्री योगवाशिष्ठे वैराग्य प्रकरणे मुरादाबादनिवासी कन्हैयालाल मिश्र कृत भाषाटीकायां संसार सुख निषेध वर्णनं नाम नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

दशमः सर्गः

[अथ अहंकार दुराशा वर्णनम्]

श्रीरामचन्द्रजी बोले—हे मुनीश्वर ! यह जो अहंकार उदय हुआ है, सो अज्ञान से महा दुष्ट है और यही परम शत्रु है। इसने मेरे ऊपर भार डाला है और यह मिथ्या है। जितने कुछ दुःख हैं, उनकी खानि अहंकार है। जब तक अहंकार है, तब तक पीड़ा की उत्पत्ति का अभाव कदाचित् नहीं होता। हे मुनीश्वर ! मैंने अहंकार से जो कुछ भजन और पुण्य किया है, सो सब व्यर्थ है। इसके द्वारा परमार्थ का सिद्धि कुछ नहीं है। जैसे राखमें आहुति डालनी व्यर्थ हो जाती है, तैसेही जानिये और जितने भी दुःख हैं, उनका बीज अहंकार है। जब पहिले इस का नाश प्राप्त हो। इसलिये आप इसका उपाय मुझसे कहिये, जिससे यह अहंकार निवृत्त होवे।

हे मुनीश्वर ! सत्य वस्तुके त्याग करने में दुःख होता है और जो वस्तु नाशवान् तथा भ्रम

से दीखती है, उसके त्याग करने में आनंद है। शान्ति रूप जो चन्द्रमा है, उसके आच्छादन करने को अहंकार रूपी राहु है। जब चन्द्रमा को राहु ग्रहण करता है, तब उसकी शीतलता और प्रकाश ढप जाती है तैसे ही जब अहंकार उपजता है, तब समता ढप जाती है, जिस समय अहंकार रूपी मेघ गरज के बरसता है तब तृष्णा रूपी कटक मंजरी बढ़ जाती है सो कदाचित् घटती नहीं। जब अहंकार का नाश होवे, तब तृष्णा का अभाव होवे, जैसे जब तक मेघ है, तब तक बिजुली है। जब बिवेक रूपी पवन चले, तब अहंकार रूपी मेघ का अभाव होकर बिजुली नाश हो ज़ाती है । या यों समझिये कि जब तेल और बाती का नाश होता है, तब दीपक का प्रकाश भी नाश हो जाता है। तैसे ही जब अंधकार का नाश होवे, तब तृष्णा का भी नाश हो जाता है।

हे मुनीश्वर ! परम दुःख का कारण अहंकार है। जब अहंकार का नाश होवे तब दुःख का भी

नाश हो जाता है। हे मुनीश्वर! यह जो मैं राम हूँ सो नहीं और इच्छा भी कुछ नहीं। क्योंकि जो मैं नहीं तो इच्छा किसको होवे और इच्छा होती है, तो यही होती है कि अहंकार रहित पद की प्राप्ति होवे। जैसे जिनेन्द्र को अहंकार उत्पन्न नहीं हुआ, तैसे ही मैं भी हो जाऊँ, ऐसी मुझको इच्छा है।

हे मुनीश्वर! जैसे कमल को पाला नाशकरता है तैसी अहंकार ज्ञान का नाश करता है, तैसे ही पारधी जाल से करता है, बन्धन पक्षी को करता है, तिससे पक्षी दीन हो जाते हैं। तैसे ही अहंकार रूपी पारधी ने तृष्णा रूपी जाल डाल कर जीव को बाँध लिया है, तिससे यह महादीन हो गया है। जैसे पक्षी अन्न के कण को सुखरूप जान कर चुगने को आता है और फिर चुगते फिरते जाल में बँध जाता है तथा उस बन्धन से दीन हो जाता है तैसे ही यह पुरुष विषय भोग की इच्छा करने से तृष्णारूपी जाल में बँध कर महादीन हो जाता है इस वास्ते—

हे मुनीश्वर ! मुझसे वही उपाय कहिये, जिससे अहंकार का नाश होवे। क्योंकि जब अहंकार का नाश होगा, तब ही मैं परम सुखी हूँगा। जैसे विंध्याचल पर्वत के आश्रय से उन्मत्त हस्ती पड़े गरजते है, तैसेही अहंकार रूपी जो विन्ध्याचल पर्वत है, तिसके आश्रय से मन रूपी उन्मत्त हस्ती नाना प्रकार के संकल्प विकल्प रूपी शब्द करता है। अतएव वही उपाय कहिये, जिससे अहंकार का नाश होवे। क्योंकि यह अहंकार अकल्याण का मूल है। जैसे मेघ का नाश करने वाला शरत्काल है, तैसे ही बैराग्य का नाशक अहंकार है। मोहादिक बिकाररूप जो सर्प हैं, उनके रहने को अहंकार रूपी बिल है और वह अहंकार कामी पुरुष की नाईं है। जैसे कामी पुरुष काम को भोगता है और फूल की माला गले में डाल कर प्रसन्न होता है। तैसेही तृष्णा रूपी तागे के साथ पिरोये हैं, सो अहंकार रूपी कामी पुरुष गले में डालता है और प्रसन्न होता है।

हे मुनीश्वर ! आत्मा रूपी सूर्य को ढकने हारा मेघरूपी अहंकार है। जब ज्ञान रूपी शरत्काल आता है, तब इस अहंकार रूपी मेघ का नाश हो जाता है और तृष्णा रूपी मेघ तुषार का भी नाश हो जाता है।

हे मुनीश्वर ! यह निश्चय करके मैंने देख लिया है कि जहाँ अहंकार है, वहाँ सब आपदा आकर प्राप्त होती है। जैसे समुद्र में सब नदी आकर प्राप्त होती है, तैसेही अहंकार में सब आपदाओं की प्राप्ति है। इस वास्ते आप वही उपाय कहिये कि जिससे अहंकार का नाश होवे।

इति श्री योग वाशिष्ठे वैराग्य प्रकरणे मुरादाबाद निवासी कन्हैयालाल मिश्र कृत भाषानुवादेअहंकार दुराशा वर्णनं नाम दशमःसर्गः ॥ १० ॥

एकादशः सर्गः

अथ चित्त दौरात्म्य वर्णनम्

श्रीरामचन्द्रजी बोले—हे मुनीश्वर ! यह मेरा चित्त काम, क्रोध, लोभ, मोह, तृष्णादिक दुखों से जर्जरी भाव को प्राप्त हो गया है और महा पुरुष के गुण वैराग्य, विचार, धैर्य, संतोष, इत्यादिक की ओर नहीं जाता है। सर्वदा विषय की गिर्द में ही उड़ता है। जैसे मोर का पंख पवन के लगने पर नहीं ठहरता तैसे ही यह चित्त सर्वदा भटकता फिरता है और इसको लाभ कुछ प्राप्त नहीं होता—जसे कुत्ता द्वार २ में भटकता फिरता है, तैसे ही यह चित्त पदार्थ को पाने के निमित्त भटकता फिरता है। किन्तु प्राप्त कुछ नहीं होता। वरन् जो कुछ प्राप्त होता है, तिससे तृप्त नहीं होता। अंत में तृष्णा रही जाती है। जैसे पिटारे में जल भरिये, तो उससे वह पूर्ण नहीं होता। क्योंकि छिद्र से जल निकल जाता है और पिटारा शून्य रहता है तैसेही चित्त को भी जो

भोग पदार्थ प्राप्त होता है, उससे संतुष्ट नहीं होता। तृष्णा सदा बनी ही रहती है।

हे मुनीश्वर ! यह चित्तरूपी महामोह का समुद्र है, जिसमें तृष्णा रूपी तरंग उठते ही रहते हैं। सो कदाचित् स्थिर नहीं होता। जैसे समुद्र में तीक्षणवेग से तरङ्ग होती हैं, सो तट के वृक्षों से टकराती हैं और वृक्षजल में बहे जाते हैं, तैसेही चित्त रूपी समुद्र में विषय बहा जाता है। बासनारूपी तरंग के वेग से मेरा अचल स्वभाव चलायमान् हो गया है, सो इस चित्त से मैं महादीन हुआ हूँ। जैसे जाल में पड़ा हुआ पक्षी दीन हो जाता है, तैसेही चित धीवर के बासना रूपी जाल में बँधा हुआ है और मैं दीन हो गया हूँ। जैसे मृगके समूह से भूली भटकी अकेली मृगी दुःखी होती है तैसे ही मैं भी आतमपद से भूला हुआ चित्त में खेदित हुआ हूँ।

हे मुनीश्वर ! यह चित्त सदा क्षोभवान रहता है, कदाचित् स्थिर नहीं होता, जैसे क्षीरसमुद्र मंदरा-

चल के द्वारा क्षोभवान् हुआ था, तैसेही यह चित्त संकल्प विकल्प से खेद पाता है जैसे पिंजरे में आया हुआ सिंह उसमें फिरता है, तैसे ही वासना में आया हुआ चित्त स्थिर नहीं होता।

हे मुनीश्वर ! इस चित्तने मुझको दूर से दूर डाला है। जैसे भारी पवन से सूखा पत्ता दूर से दूर जा पड़ता है तैसे ही चित्त रूपी पवन ने मुझको आत्मानंद से दूर डाल दिया है। जैसे सूखे तृण को अग्नि जला देती है, तैसे ही मुझको चित्त जलाता है। जैसे अग्निसे धूम निकलता है तैसे ही चित्तरूपी अग्निसे तृष्णा रूपी धूम निकलता हैं। जिससे मैं परम दुःख पाता हूँ। यह चित्त हंस नहीं बनता है, जैसे राजहंस दूध और जल मिले को अलग २ करता है तिसकी नाईं मैं भी अन्तरात्माके साथ ज्ञान के द्वारा एकसा होगया हूँ उसको अलग नहीं कर सकता हूँ। जब आत्मपद पानेका यत्न करता हूँ, तब अज्ञान प्राप्त नहीं करने देता। जैसे नदी का प्रवाह

समुद्र में जाता है, उसको पहाड़ सीधा चलने नहीं देता और समुद्र की ओर जाने नहीं देता है, तैसे ही मुझको चित्त आत्मा की ओर से रोकता है और परम शत्रु है। हे मुनीश्वर ! इसलिये वही उपाय कहिये, जिससे चित्तरूपी शत्रु का नाश होवे। यह तृष्णा मेरा भोजन करती रहती है जैसे मृतक शरीर का कुत्ते कुतिया भोजन करती हैं। तैसे आत्मा के ज्ञान बिना मैं मृतक के समान हूँ। जैसे बालक अपनी परछाहीं को बैताल मान कर भय पाता है और जब विचार करके देखता है, तब बैताल का भय नहीं रहता, तैसे ही चित्तरूपी बैताल ने मुझको स्पर्श किया है, तिससे मैं भय को पाता हूँ। इसलिये आप वही उपाय कहिये जिससे चित्तरूपी बैताल नष्ट होजावे।

हे मुनीश्वर ! अज्ञान द्वारा मिथ्या बैताल मेरे चित्त में दृढ़ हो रहा है। उसके नाश करने को मैं समर्थ नहीं हो सकता हूँ। चाहे आदमी अग्नि में बैठ जाय, बड़े ऊँचे पर्वत पर चढ़ जाय और चाहे

बड़े २ वज्रों को भी चूर कर डाले, किन्तु तथापि मन को वश में करना बड़ा ही काठिन है। किन्तु चित्त का जीतना महा कठिन हैं ऐसा मैं जानता हूँ। चित्त सदा ही चलायमान स्वभाव वाला है, जैसे स्तंभ के साथ बँधा हुआ बानर कदाचित् स्थिर होकर नहीं बैठता है, तैसे ही चित्त वासना के मारे कभी स्थिर नहीं होता है।

हे मुनीश्वर! बड़े समुद्र को पार कर जाना सुगम है और सुमेरु का उल्लंघन करना भी सुगम है, परन्तु चित्त को जीतना महा काठिन है जो सदा चल रूप है, जैसे समुद्र अपना द्रव स्वभाव कदाचित् त्याग नहीं करता और महा द्रवीभूत रहता है जिससे नाना प्रकार के तरङ्ग होते हैं तैसे ही चित्त भी चंचल स्वभाव को कभी नहीं त्यागता है, नाना प्रकार की वासना उपजती रहती है और बालक की नाईं चंचल है, सदा विषय की ओर दौड़ता है, कहीं पदार्थ की प्राप्ति होती है, परन्तु भीतर से सदा चंचल रहता है। जैसे सूर्य के उदय होने पर दिन होता है

और अस्त होने से दिन नष्ट हो जाता है, तैसे ही चित्त के उदय होने से त्रिलोकी की उत्पत्ति है और चित्त के लीन होने से लीन हो जाता है।

हे मुनीश्वर ! किसी समुद्र में जल गंभीर है तिसमें बड़े सर्प रहते हैं। सो जो कोई समुद्र में प्रवेश करे तब सर्प उसको काटते हैं, जिससे उनको विष चढ़ जाता और वे बड़ा दुःख पाते हैं, सो उसका दृष्टान्त भी सुनिये।

चित्तरूपी समुद्र है और वासनारूपी जल है, तिसमें छलरूपी सर्प हैं, जब जीव उनके निकट जाता है, तब भोगरूपी सर्प उसको काटते हैं और तृष्णारूपी विष होता है। उससे मरते हैं।

हे मुनीश्वर ! भोग को सुखरूप जान कर जो चित्त दौड़ता है, सो वह भोग दुःखरूप है। जैसे तिनकों से खाई ढक जाती है उसको देखकर मूर्ख मृग खाने को दौडता है, तब खाई में गिर पड़ता है, और दुःख पाता है। तैसे ही चित्तरूपी मृग भोग का

सुख जान कर भोगने को तत्पर होता है। तब तृष्णा रूपी खाई में गिर पड़ता है और जन्मान्तर में दुःख को भोगता है। हे मुनीश्वर! यह चित्त कभी बड़ा गंभीर हो बैठता है, जब भोगोंको देखता है, तब उनकी ओर चीलकी नाईं झपट पड़ता है। जैसे चील पक्षी आकाश में उड़ता फिरता है, पृथ्वी पर मांस को देखता है, तब वहाँ से आकर पृथ्वी पर बैठता है, और लेता है। तैसे ही यह चित्त तबतक उदार है, जब तक भोग को नहीं देखता है। जब विषयों को देखता है, तब आसक्ति पाकर विषयों में जाता है और यह चित्त वासना रूपी शय्या में सो रहता है, आत्मपद की ओर जागता नहीं। इस चित्त रूपी जाल ने मुझको फाँस लिया है, इस जाल में वासना रूपी डोरे में संसार की सत्यता रूपी गाँठें और भोग रूपी चून हैं। इसको देखकर भी मैं फ़स गया हूँ। कभी पाताल में कभी आकाश में वासना रूपी जेवरी द्वारा घंटी यंत्र की नाईं बँधा हूँ। अत-

एव हे मुनीश्वर ! आप वही उपाय कहिये, जिससे मैं चित्तरूपी शत्रु को जीत लूँ ?

अब मुझको किसी भोग की इच्छा नहीं और जगत् की लक्ष्मी भी मुझको बिरस भासती है। जैसे चन्द्रमा बादल की इच्छा नहीं करता; किन्तु चौमासे में आच्छादित हो जाता हैं, तैसे ही मैं भी भोग की इच्छा नहीं करता। किन्तु तथापि भोग मेरे सन्मुख आते हैं। इस वास्ते जगत् की लक्ष्मी को मैं नहीं चाहता और जो मेरा चित्त है, वह परम शत्रु है।

हे मुनीश्वर ! महा पुरुष जो जीतने का यत्न करते हैं सो वे जब चित्त को जीतें, तब परमपद को पावें, अतएव मुझसे वही उपाय कहिये, जिससे मन को जीतूं। क्योंकि सब दुःखों की जड़ यही है। जिस प्रकार पर्वत के ऊपर का वन पर्वत के आश्रय से है, ऐसे ही संसार के जितने भी दुःख हैं, उन सबका आधार यह चित्त ही है।

इति श्री योगवाशिष्ठे वैराग्य प्रकरणे मुरादाबादनिवासी कन्हैयालाल मिश्र कृत भाषाटीकायां चित्त दौरात्म्य वर्णनं नाम एकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

द्वादश सर्गः

अथ तृष्णा गारुणी वर्णनम्

श्रीरामचन्द्रजी बोले—हे ब्रह्मन्! चेतन्रूपी आकाश में जो तृष्णारूपी रात आई है, उस में काम क्रोध लोभ मोहादिक उलूक विचरते हैं, जब ज्ञान रूपी सूर्य उदय होता है तब मोहादिक उलूक भी नष्ट हो जाते हैं, जब सूर्य उदय होता है तब बरफ उष्ण होकर पिघल जाता है। तैसे ही संतोषरूपी रस को तृष्णारूपी उष्णता सुखाती है। वह तृष्णा जैसे शून्य वन में पिशाचिनी अपने परिवार सहित फिरती रहती है और प्रसन्न होती है, वैसे ही बिचरती है। वह वन और पिशाच क्या है, अर्थात् आत्मपद से शून्य चित्तही भयानक शून्य वन है, तिसमें तृष्णा रूपी पिशाचिनी है और मोहादिक उसका परिवार है, उसको साथ लेकर फिरती है।

हे मुनीश्वर! चितरूपी एक पर्वत है तिसके आश्रय से तृष्णा रूपी नदी का प्रवाह चलता है

और नाना प्रकार संकल्प रूपी तरङ्ग को पसारती है। जैसे मेघ को देखकर मोर प्रसन्न होता है, अतएव परम दुःख का मूल तृष्णा है। जब मैं किसी संतोषादि गुण का आश्रय करता हूँ—तब तृष्णा उसको नाश कर देती है। जैसे सुन्दर सारंगी को चूहा तोड़ डालता है तैसे ही संतोषादि गुण को तृष्णा नाश कर देती है।

हे मुनीश्वर ! मैं सब के उत्कृष्ट पद में स्थित होने का यत्न करता हूँ किन्तु यह तृष्णा उस में स्थित नहीं होने देती। जैसे जाल में फँसा हुआ पक्षी आकाश में उड़ने का यत्न करता है, परन्तु उड़ नहीं सकता तैसे ही मैं अनात्मपद से आत्मपद को प्राप्त नहीं हो सकता। स्त्री पुत्र और कुटुम्ब ने जाल बिछाया है, मैं उसमें फँसा हूँ—सो निकल नहीं सकता। जैसे कि आशारूपी फाँसी में बँधा हुआ कभी ऊपर को जाता है और कभी फिर नीचे को गिरता है, इसी तरह घटीयंत्र की नाईं मेरी भी गति

है। जैसे कि इन्द्र का धनुष मेघ में सहित दिखाई देता है और बड़ा तथा बहुत रङ्ग से भरा हुआ होता है, परन्तु बीचसे खाली है, इसी तरह तृष्णा मलिन अन्तःकरण में होती है, सो बड़ी है और गुण रूपी धागे से रहित है, ऊपर से देखने मात्र से सुन्दर है, परन्तु इसमें कार्य सिद्ध कुछ नहीं होता।

हे मुनीश्वर! तृष्णारूपी मेघ है। उससे दुःख रूपी बूँद टपकती हैं। और तृष्णारूपी काली नागिन है--सो उसका स्पर्श तो कोमल है। परन्तु विष से परिपूर्ण है। उसके डसे से मृतक हो जाता है और तृष्णारूपी बादल है, जो कि आत्मरूपी सूर्य के आगे आवरण करता है। अस्तु जब ज्ञान रूपी पवन निकले तब तृष्णा रूपी बादल का नाश होवे। तथा आत्मपद का साक्षात्कार होवे। फिर ज्ञान रूपी कमल को सँकोच करने हारी तृष्णारूपी निशा है और तृष्णा रूपी महा भयानक काली रात्रि है, जिससे बड़े बड़े धैर्यवान्

भी भयभीत होते हैं और नयन वाले को अंधकार में डालती है। जब यह चाहती है तब वैराग्य और अभ्यास की नेत्र को अंधा कर डालती है। तात्पर्य यह कि सत्य असत्य को विचारने नहीं देती।

हे मुनीश्वर! पुनः तृष्णारूपी डाकिनी है, जो कि संतोषादिक पुत्र को मार डालती है। फिर तृष्णा रूपी कंदरा है, उसमें मोह रूपी उन्मत्त हाथी गरजते हैं, पुनः तृष्णारूपी समुद्र है जिस में आपदा रूपी नदी आकर प्रवेश करती है अतएव वही उपाय मुझ से कहिये जिसमें तृष्णा रूपी दुःखों से छूटूँ।

हे मुनीश्वर! अग्नि से भी ऐसा दुःख नहीं होता तथा खड्गके प्रहार से और इन्द्र के वज्रसे भी ऐसा दुःख नहीं होता, जैसा दुःख तृष्णा से होता है, सो तृष्णा के प्रहार से घायल हुआ व्यक्ति बड़ा ही दुःख पाता है। तृष्णा रूपी दीपक

पड़ा हुआ जलता है--तिसमें संतोपादिक तरङ्ग जल जाते हैं, जैसे जल में मछलियाँ रहती हैं सो जल में कंकरी रेती आदिको देख मांस जान कर वह मुख में लेती हैं उससे उनका कुछ अर्थ सिद्ध नहीं होता। तैसे ही तृष्णाभी जो कुछ पदार्थ देखती है, तिसके पास उड़ती हैं और तृप्त किसी से नहीं होती। पुनः तृष्णा रूपी एक पक्षिणी है सो कभी कहीं उड़ जाती है और कभी कहीं। किन्तु स्थिर कभी नहीं होती। तैसे ही तृष्णा भी किसी पदार्थ को कभी ग्रहण करती है और कभी दूसरे को। परन्तु स्थिर कभी नही होती। तृष्णा रूपी वानर है, सो कभी किसी वृक्ष पर तो कभी किसी वृक्ष पर जाता है स्थिर कभी नहीं होता। जो पदाथ नहीं प्राप्त होता, तिसके निमित्त यत्न करता है तैसे ही तृष्णा भी नाना प्रकार के पदार्थों को ग्रहण करती है, किन्तु भोगकर तृप्त कदाचित् नहीं होती जैसे घृत की आहुतिसे अग्नितृप्त नहीं

होती तैसे ही जो पदार्थ प्राप्ति के योग्य नहीं है, तिसमें और तृष्णा दौड़ती है और शांति को नहीं पाती।

हे मुनीश्वर ! तृष्णा रूपी उन्मत्त नदी है वही बहते हुये को न जाने कहाँका कहाँले जाती है। कभी तो पहाड़ की बाजू में ले जाती है और कभी दिशाओं में ले जाती है मनुष्योंको लिये फिरती है और तृष्णा रूपी जो नदी है, उसमें वासना रूपी अनेकतरंगें उठती हैं। वह कभी मिटती नहीं है और उसने जगत् रूपी अखाड़ा लगाया है। उसको शिर ऊँचा करके देखती है, उससे मूर्ख बड़े प्रसन्न होते हैं जैसे सूर्य के उदय होने से सूर्य मुखी कमल खिल जाता है, तैसे ही मूर्ख तृष्णा को देख कर प्रसन्न होते हैं, पुनः तृष्णा रूपी वृद्ध स्त्री है, जो पुरुष इसका त्याग करता ह, उसके पीछे २ लगी फिरती है। कभी उसको छोड़ नहीं सकती। तृष्णा रूपी जो डोरी है उसके साथ जीव रूपी पशु बाँधे

हुए हैं। इस कारण वह भ्रमते फिरते हैं। तृष्णा बड़ी दुष्टनी हैं व शुभ गुणों को देखते ही मार डालती है। उसके संयोग से मैं दीन हो जाता हूँ। जैसे पपीहा स्वाती को देखकर प्रसन्न हो जाता है और वूँद ग्रहण कर लेता है। मेघ को जब पवन ले जाता है तब पपीहा दीन हो जाता है। तैसे ही तृष्णा शुभ गुणों का नाश कर देती है। तब उस समय मैं दीन हो जाता हूँ।

हे मुनीश्वर ! तृष्णा ने मुझको अत्यन्त ही भय भीत कर दिया है जैसे सूखे हुए तृण को पवन दूर से दूर डाल देता है। तैसे ही तृष्णा रूपी पवन मुझको दूर ही डाल दिया है। अस्तु मैं आत्मपद से दूर प .। हूँ। हे मुनीश्वर ! जैसे भौंरा कमल के ऊपर जाता है, कभी नीचे बैठता है, कभी आस पास फिरता है, और स्थिर नहीं होता, तैसेही तृष्णा-रूपी भौंरा संसाररूपी कमल के चारों ओर फिरता है कभी ठहरता नहीं है। जैसे मोती की सीप में

अनेक मोती निकलते हैं, तैसे ही तृष्णारूपी सीप में जगत् रूपी अनेक दुःख रहते हैं। इससे वह उपाय कहिये जिससे तृष्णा निवृत्त होजावे।

हे मुनीश्वर! यह तृष्णा वैराग्य से निवृत्त होती है और किसी प्रकार से निवृत्त नहीं होती। जैसे अन्धकार का प्रकाश से नाश होता है, तैसे ही तृष्णा का नाश और उपाय से नहीं होता। तृष्णा रूपी जो जल है, वह गुण रूपी पृथ्वी को खोद डालता है। पुनः तृष्णा रूपी जो बल्ली है, वह गुण रूपी रस को पीती है। तृष्णा रूपी जो धूरि है, सो अन्तःकरण रूपी जल में उछल कर उसको मैला करती है।

हे मुनीश्वर! जैसे नदी वर्षा काल में बढ़ती है और फिर घट जाती है, तैसे ही जब इष्ट भोगरूपी जल प्राप्त होता है, तब हर्ष के द्वारा बढ़ती है। जब भोग रूपी जल घट जाता है, तब सूख कर क्षीण हो जाती है! हे मुनीश्वर! इस तृष्णा ने

मुझको दीन कर दिया है, जैसे सूखे तृण को पवन उड़ाती है तैसे ही यह तृष्णा मुझे को उड़ाती हैं। इस लिये वह उपाय कहिये कि जिससे इस तृष्णा का नाश हो कर आत्मपद की प्राप्ति हो, दुःख नष्ट होवे और आनन्द मिले।

इति श्री योग वाशिष्ठे वैराग्य प्रकरणे मुरादावाद निवासी कन्हैयालाल मिश्र कृत भाषा टीकायां तृष्णा गारुणी वर्णनं नाम द्वादशःसर्गः ॥ १२ ॥

त्रयोदशः सर्गः

अथ देह नैराश्य वर्णनम्

श्रीरामचन्द्रजी बोले—हे मुनीश्वर ! यह जो अमंगल रूपी शरीर जगत् में उत्पन्न हुआ है, सो बड़ा अभाग्यशाली है, सदा विकारवान् मांस मज्जा से पूर्ण और सदा अपवित्र है, उस में कुछ अर्थ सिद्ध नहीं होता। इस कारण विकार रूपी शरीर की इच्छा

मैं नहीं रखता। यह शरीर न अज्ञ है न तज्ञ है अर्थात् न जड़ है न चैतन्य है, जैसे अग्नि के संयोग से लोहा अग्निवत् हो जाता है, वह यद्यपि जलाता है, परन्तु आप नहीं जला। वैसे ही यह देह न जड़ है, न चैतन्य है। जड इस कारण नहीं कि इससे कार्य भी होता है। चैतन्य इस कारण नहीं कि इसको स्वयं ज्ञान कुछ नहीं होता। इस लिये यह शरीर मध्यम भाग में है। क्योंकि जो चैतन्य आत्मा इसमें व्याप्त हो रहा है, उसको मैं लोह के अग्नि समान जानता हूँ। और अपवित्र अस्थि, मांस, रुधिर, मूत्र, बिष्ठा से पूर्ण और विकारवान् ऐसा जो देह है सो दुःख का स्थान है और यह इष्ट देव के पाने से प्रसन्न और अनिष्ट के पाने से दुःखी होता है इससे ऐसे स्वार्थी शरीर की मुझको इच्छा नहीं, यह अज्ञान से उत्पन्न होता है।

हे मुनीश्वर! ऐसे अमंगल रूपी शरीर में जो अहम्भाव रहता है, सो दुःख का कारण है इस

संसार में स्थित होकर नाना प्रकार के शब्द करता है। जैसे कोठरी में बिलाव बैठा हुआ नाना प्रकार के शब्द करता है, वैसे ही अहंकार रूपी बिलाव देह में वैठा हुआ अहं अहं करता है, चुप कभी नहीं रहता। हे मुनीश्वर ! जो किसी के निमित्त से शब्द होवे, तव सुंदर है, अन्यथा शब्द व्यर्थ है । जैसे जय के निमित्त ढोलका शब्द सुन्दर मालूम होता है, तैसेही अहंकार से रहित जो शब्द बोले जाते हैं, वह अच्छे मालूम होते हैं।

यह शरीर रूपी नौका भोग रूपी रेती में पड़ी है इसका पार होना कठिन है। जब वैराग्य रूपी जल बढ़े और प्रवाह अधिक हो तथा अभ्यास रूपी पतवारी का बल हो, तो संसार के पार रूपी किनारे पर पहुँचे। यह शरीर रूपी बेड़ा जो संसार रूपी समुद्र और तृष्णा रूपी जल में पड़ा है, इसको भोग रूपी मगर मच्छ शरीर रूपी बेड़े को पार लगने नहीं देते, जब शरीर रूपी बेड़े को वैराग्य रूपी

वायु मिलेंगे, और अभ्यासरूपी पतवारी का बल मिले, तो शरीर रूपी बेड़ा पार हो सकता है।

हे मुनीश्वर! जिन मनुष्यों ने ऐसे बेड़े को उपाय के द्वारा संसार समुद्र से पार किया है, वही सुखी हुए हैं और जिन्होंने नहीं किया, वे अत्यन्त दुःख को प्राप्त होते हैं तथा इस बेड़े द्वारा उलटे डूबेंगे, जैसे बेड़े में छिद्र हो और उसमें जल प्रवेश करने लगे, तो वह डूब जाता है, सो यही शरीर रूपी बेड़े में तृष्णारूपी जो छिद्र है उसके द्वारा यह शरीर संसार समुद्र में डूब जाता है और भोग रूपी मगर इसको खाते हैं। यह बड़ा आश्चर्य है— जो बेड़ा अपने निकट नहीं भासता है और मनुष्य मूर्खता करके अपने आपको बड़ा मानता है और तृष्णा रूपी छिद्र करके दुःख पाता है। शरीर रूपी वृक्ष है उसमें भुजारूपी शाखा है जिसके अँगुली पत्र हैं जंघा के स्तंभ मांस रूपी अन्तर का भोग और वासना इसकी जड़ है सुख दुःख इसके फूल

और तृष्णारूपी घुन हैं सो इस शरीररूपी वृक्ष को खाता रहता है। जब इस पर सफेद फूल लगते तब यह नाश का समय पाता है। कारण मृत्यु के निकटवर्ती होती है।

फिर शरीर रूपी वृक्ष कैसा है कि भुजा रूपी इसके टास हैं हाथ पैर इसके पत्र, गिरें इसका गुच्छा, दाँत फूल, और जंघा स्तंभ हैं। तथा कर्म रूपी जल के द्वारा यह बढ़ जाता हैं जैसे वृक्ष से जल निक-लता है, सो चिकटा, तैसे ही जल शरीर के द्वारा निकलता रहता हैं और तृष्णा रूपी विष से पूर्ण सर्पिणी रहती है। जब मनुष्य कामना के लिये इस वृक्ष का आश्रय लेता है, तब तृष्णा रूपी सर्पिणी उसको डसती है। उस विष से वह मर जाता है।

हे मुनीश्वर! ऐसा जो अमङ्गल रूपी शरीर वृक्ष है, उसकी इच्छा मुझको नहीं है, क्योंकि यह परम दुःख का कारण है।

जब तक यह पुरुष अपने परिवार में बँधा हुआ

है, तब तक मुक्ति नहीं होती। जब परिवार का त्याग करे, तब मुक्ति होवै। देह, इन्द्रिय, प्राण, मन, बुद्धि, इसका परिवार है और उनमें अहंभाव है। उसका त्याग करे, तब मुक्ति प्राप्त हो; अन्यथा नहीं।

हे मुनीश्वर! जो श्रेष्ठ पुरुष हैं सो पवित्र स्थान में ही रहते हैं, वह अपवित्र में नहीं रहते। वह अपवित्र स्थान यह देह है इसमें रहने वाला भी अपवित्र है। अस्थिरूपी इस घर में लड़के हैं रुधिरं मूत्र विष्ठा की कीच और मांस की कैगल करी है। अहंकार रूपी शरपंच इसमें रहता है और तृष्णारूपी श्वपचनी इसकी स्त्री है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, इसके बेटे हैं तथा आँत और बिष्टादिक से यह पूर्ण हुआ है ऐसा जो अपवित्र स्थान अमङ्गलरूप शरीर है, उसको मैं अंगीकार नहीं करता। यह शरीर रहे चाहे न रहे इस के साथ मेरा अब कुछ प्रयोजन नहीं।

हे मुनीश्वर! एक बड़ा घर है जिसमें बड़े पशु रहते हैं, वे धूल उड़ाते हैं, यदि उस गृह में

कोई जाता है तो सिंह मारने लगता है और धूल भी उनके ऊपर गिरती है। यह बड़ा घर अपना शरीर है, तब बड़ी आपदा को प्राप्त होता है। तात्पर्य यह कि जब इस में अहंभाव घर करता है, तव इन्द्रिय रूपी पशु विषय रूप सिंह से मारते हैं और तृष्णारूपी धूल उसको मलीन करती है।

हे मुनीश्वर ! ऐसे शरीर को मैं अंगीकार नहीं करता जिसमें सदा कलह होती रहती है, उसमें ज्ञान रूपी संपदा प्रवेश नहीं कर सकती। ऐसा जो शरीर रूपी गृह है, तिसमें तृष्णा रूपी चंडाल स्त्री रहती है। सो इन्द्रिय रूपीझरोखे से देखती रहती है और सदा कल्पना करती रहती है। इसमें शमदमादि रूप संपदा प्रवेश नहीं करती, उस घर में एक शय्या है जब उनके ऊपर विश्राम करता है, तब कुछेक सुख पाता है। परन्तु तृष्णा का परिवार नहीं करने देता; सो सुषुप्ति रूपी शय्या है। जब उसमें विश्राम करता है तब काम

क्रोधादि रुदन करते हैं, और इस बडी स्त्री का जो परिवार काम, क्रोध, मोह, इच्छा है, उसको उठा देते हैं। विश्राम नहीं करने देते।

हे मुनीश्वर ! ऐसा दुःख का मूल जो शरीर रूपी गृह है उसकी इच्छा मैंने त्याग दी है। क्योंकि यह परम दुःख देने वाला है। अतः इसकी इच्छा मुझको नहीं।

हे मुनीश्वर ! शरीर रूपी वृक्ष में तृष्णारूपी कौवानी आकर स्थित हुई है। सो जैसे कौवानी नीचे पदार्थ के पास उड़ती है तैसे ही तृष्णारूपी कौवानी भोगरूपी मलिन पदार्थ के पास उड़ती है और तृष्णा बँदरी की नाईं शरीर रूपी वृक्ष को हिलाती है। उसको स्थित नहीं होने देती और जैसे उन्मत्त हाथी कीच में फँस जाता है और निकल नहीं सकता तथा खेदवान होता है, तैसे ही अज्ञानरूपी मद से उन्मत्त हुआ जीव शरीर रूपी कीच में फँसा है, सो निकल नहीं सकता।

पड़ा हुआ दुःख ही पाता है। अस्तु ऐसा जो दुःख पाने वाला शरीर है, तिसको मैं अंगीकार नहीं करता।

हे मुनीश्वर ! यह शरीर अस्थि मांस रुधिर से पूर्ण होने पर अपवित्र है। जैसे हाथी के कान सदा ही हिलते हैं, तैसे ही इसको मृत्यु पड़ी हिलाती है, कुछ काल का विलंब है मृत्यु इसको ग्रास कर ही लेगी, इसलिये मैं इस शरीरको अङ्गीकार नहीं करता।

यही शरीर बड़ा कृतघ्न है, भोग भोगता है। ऐश्वर्य को प्राप्त करता है, परन्तु मृत्यु इसे मित्रता नहीं करती और जब जीव इसको छोड़ कर परलोक में जाता है, तब अकेला ही जाता तथा शरीर को छोड़ देता, जीव इसको सुख के निमित्त अनेक यत्न करता है, परन्तु सङ्ग में सदा नहीं रहता। ऐसा जो कृतघ्न शरीर है, इसको मैंने मन से त्याग दिया है, कारण यह दुःख देने वाला है।

हे मुनीश्वर ! और आश्चर्य देखो ! जो इसका भोग करता है, तिसके साथ चलता नहीं। जैसे धूरि से मार्ग दीखता नहीं है तैसे ही यह जीव जब चलने लगता है, तब शरीर के साथ क्षोभवान होता और बासनारूप धूरि से संयुक्त चलता है—परन्तु दीखता नहीं कि कहाँ गया ? जब परलोक को जाता है; तब बड़ा कष्ट होता है। क्योंकि इसने शरीर के साथ स्पर्श किया है।

हे मुनीश्वर ! यह शरीर क्षणभंगुर है जैसे जल का बूँद पत्र के ऊपर गिरता है, सो क्षणमात्र रहता है, तैसे ही शरीर भी क्षण भंगुर है सो ऐसे शरीर में आस्था करनी मूर्खता है और ऐसे शरीर पर उपकार करना भी दुःख के निमित्त है—सुख कुछ नहीं है और जो धनाढ्य हैं, सो शरीर से वही भोग भोगते हैं और निर्धन थोडे भोग भोगते हैं, परन्तु जरावस्था और मृत्यु दोनों को प्राप्त होता है, इसमें विशेषता कुछ नहीं। शरीर का उपकार करना

और भोग भोगना तृष्णा से उलटा दुःख का कारण है जैसे किसी नागिनी को घर में रख कर उसको दूध पिलाना । किन्तु तौ भी अंत में उसको काट कर मारैगी ही । तैसे ही जीव ने नागिनी से तृष्णा रूपी मिताई करी है सो मारैगा । क्योंकि वह नाश-वंत है । जैसे पवन का वेग आता है और जाता है तैसे ही यह शरीर नाशवन्त है । इससे प्रीति करनी ही दुःख का कारण है । सब जीव इसकी अवस्था में बँधे हुए हैं । इसका त्याग किसी बिरले ही ने किया है । जैसे कोई विरला मृग ही मरु-तस्थल के जल की आस्था त्यागता है और शेष सब पड़े हुए भ्रमते हैं ।

हे मुनीश्वर ! विजली और दीपक का प्रकाश भी आता जाता ही दीखता है । परन्तु इस शरीर का आदि अन्त नहीं दीखता कि कहाँ से आता और कहाँ जाता है । जैसे समुद्र में बुदबुदे उपजते और मिटते हैं, उनकी आस्था करने से कुछ लाभ

नहीं तैसे ही शरीर की आस्था करनी योग्य नहीं। यह अत्यन्त नाश रूप है। स्थिर कदाचित होता नहीं। जैसे बिजली स्थिर नहीं होती तैसे शरीर भी स्थिर नहीं रहता। अतएव इसकी मैं आस्था नहीं करता। इसका अभिमान मैंने त्याग दिया है। जैसे कोई सूखे तृण को त्याग देता है, तैसे ही मैंने यह भाव त्याग दिया है।

हे मुनीश्वर! ऐसे शरीर को पुष्ट करना दुःख को निमित्त है। यह शरीर किसी अर्थ में आने योग्य नहीं। बल्कि जलाने के सिवाय और काम में नहीं आती, तैसे ही शरीर भी जड़ और गूँगा जलाने के अर्थ ही है। हे मुनीश्वर! जिस पुरुष ने काष्ठ रूपी शरीर को ज्ञानाग्नि द्वारा जलाया है, तिसका परम अर्थ सिद्ध हुआ है और जिसने नहीं जलाया, वह परम दुःख पाता है।

हे मुनीश्वर! न मैं शरीर हूँ न मेरा शरीर है, न इनका मैं शरीर हूँ न मेरा है अब मुझको

कामना कोई नहीं है मैं निरासी पुरुष हूँ और शरीर के साथ मुझको कुछ प्रयोजन नहीं है। अतएव आप वही उपाय कहिये कि जिसके द्वारा मैं परम-पद को प्राप्त कर सकूँ।

हे मुनीश्वर! जिस पुरुष ने शरीर का अभि-मान त्यागा है, वह परमानन्द रूप है और जिसको देह का अभिमान है वह परम दुःखी है। जितने कुछ दुःख हैं; सो शरीर के संयोग से होते हैं। मान, अपमान, जरा, मृत्यु, दम्भ, भ्रांति, मोह, शोक आदि सर्व विकार देह के संयोग से होते हैं, जिसको देह में अभिमान है उसको धिक्कार है और सब आपदा उसको प्राप्त होती है। जैसे समुद्र में नदी आकर प्रवेश करती है। जिसको देह का अभिमान नहीं वह पुरुषों में उत्तम है वन्दना करने योग्य है। ऐसे पुरुष को मेरा नम-स्कार है। और सब संपत्तियें भी उसी को प्राप्त होती हैं। जैसे मानसरोवर में सब हंस आकर

रहते हैं, तैसे ही जहाँ देहाभिमान नहीं रहता, तहाँ सब संपत्तियें आकर रहती हैं। हे मुनीश्वर! अपनी अपनी छाया में बालक बैताल के समान प्रतीत होता है, तब बैताल का अभाव हो जाता है। तैसै ही अज्ञान से अहंकार रूपी पिशाच ने शरीरमें दृढ़ अवस्था बताई। अतएव आप वह उपाय बताइये कि जिस से अशंका रूपी पिचाश का नाश होवे और अवस्था रूपी फाँसी टूटे।

हे मुनीश्वर! प्रथम जो मुझको अज्ञान था, सो अहंकार पिशाच था, उसके अनन्तर मेरे शरीर में अवस्था उत्पन्न हुई जैसे बीज प्रथम अंकुर से वृक्ष होता है। तैसे ही अहंकार से शरीरकी अवस्था होती है। हे मुनीश्वर! इस अहंकार रूपी पिचाश ने सब जीवों को दीन किया हैं और वह दीनता को प्राप्त होता है, तैसेही अहंकार रूपी पिशाचने मुझको दीन कर दिया है, और वह अहंकार रूपी पिशाच अविकार से सिद्ध है, और विचार करनेसे

उसका अभाव होता है जैसे प्रकाश से अन्धकार का नाश हो जाता है तैसे ही बिचार करने से अहंकार का नाश हो जाता है।

हे मुनीश्वर ! जिस शरीर में आस्था रक्खी है, वह शरीर जल के प्रवाह की भाँति स्थिर नहीं होता। ऐसा चलायमान है जैसे विजुली की चमक स्थिर नहीं होती और गन्धर्व नगर की आस्था करनी व्यर्थ है।

हे मुनीश्वर ! ऐसे शरीर की आस्था करके मनुष्य अहंकार करते हैं और जगत के पदार्थों के निमित्त यत्न करते हैं। वे महा मूर्ख हैं। जैसे स्वप्न मिथ्या है। तैसे ही यह जगत मिथ्या है इस को सत्य जान कर जो इसका यत्न करता है, वह अपने बन्धन के निमित्त ही करता है जैसे घुरान गुफा बनाती है सो वह अपने बन्धन के निमित्त ही है और पतङ्ग दीपक की इच्छा करता है सो भी अपने नाश के ही निमित्त, तैसे ही अज्ञानी व्यक्ति

अपने देहका अभिमान कर भोगकी इच्छा करता है सो अपने नाश के निमित्त ही करता है।

हे मुनीश्वर ! मैं तो इस शरीर को अङ्गीकार नहीं करता क्योंकि इस शरीर का अभिमान परम दुःख देने वाला है, जिसको देह का अभिमान नहीं रहा, उसको भोग की इच्छा भी न रहेगी। इससे मैं निराश हूँ और परम पदकी इच्छा है जिसके पाने से बारम्बार संसार समुद्र की प्राप्ति न होवे।

इति श्रीयोग वाशिष्ठे वैराग्य प्रकरणेकन्हैयालाल मिश्र कृत भाषा टीकायां देह नैराश्यवर्णनं त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥

चतुर्दशः सर्गः

(अथ बाल्यावस्था वर्णनम्)

श्रीरामचन्द्रजी बोले—हे मुनीश्वर ! इस संसार समुद्र में जिस जीव ने जन्म पाया है उसमें बालक अवस्था प्रथम इसको प्राप्त हुई। सो भी परम दुःख का मूल है। उसमें यह जीव परम दीन हो जाता है और जितने अगुण इसमें आकर प्रवेश करते हैं वह कहता हूँ। अशक्यता, मूर्खता, इच्छा, चपलता, दीनता और दुःखसन्ताप आदि विकार इसको प्राप्त होते हैं। यह बाल्यावस्था महा विकारवान् है। और बालक पदार्थ की ओर दौड़ता है। एक वस्तु को ग्रहण कर दूसरी को चिपटता है। वह स्थिर नहीं रहता। फिर और में लग जाता है। जैसे बानर एक जगह नहीं बैठता और जो किसी पर क्रोध करता है, तब अन्त में पड़ा २ जलता है और बड़ी इच्छायें करता है,

उनकी प्राप्ति नहीं होती। सदा तृष्णा में रहता है और क्षण में भयभीत हो जाता है। शान्ति को प्राप्त नहीं होता। फिर महादीन हो जाता है। जैसे कदली बनका हाथी साँकल से बँधा हुआ दीन महादीन हो जाता है। तैसे ही यह चैतन्य पुरुष बालक अवस्था से महादीन हो जो कुछ इच्छा करता है सो बिचार से रहित है। इस कारण दुःख पाता है। औरं जो मूढ़ तथा मूक अवस्था है उससे कुछ सिद्धि नहीं होती। किसी पदार्थ की प्राप्ति होने पर उससे क्षण मात्र सुखी रहता है, किन्तु पुनः तपने लगता है। जैसे तपी हुई पृथ्वी पर जल डालिये, तो एक क्षण को शीतल होती है। फिर उसी प्रकार से तपने लगती है। तैसे ही वह भी तपता है जैसे रात्रि के अंत में सूर्य का उदय होने से उलूकादि कष्टपाते है तैसे ही इस जीव को अपने स्वरूप के अज्ञान से वाल्यावस्था में कष्ट होता है।

हे मुनीश्वर ! जो बालक अवस्था की संगति

करता है, वह भी मूर्ख है। क्योंकि यह विवेक रहित अवस्था है और सदा अपवित्र है तथा सदा पदार्थ की ओर दौड़ता है। ऐसी मूढ़ और दीन अवस्थाकी मुझको इच्छा नहीं। जिस पदार्थ को देखता है उसी की ओर दौड़ता है और क्षण क्षण में अपमान को पाता है। जैसे कूकर क्षण २ में द्वार की ओर जाता और अपमान पाता है तैसे ही बालक भी अपमानको प्राप्त होता है और उसको सदा माता पिता और बांधवों का भय रहता है तथा आप से बड़े बालक का भी भय रहता है और पशु पक्षियों का भय रहता है।

हे मुनीश्वर! ऐसी दुःखरूपी अवस्था की मुझको इच्छा नहीं है। जैसे स्त्री के नयन और नदी का प्रवाह चंचल है उससे भी अधिक मन और बालक चंचल है ऐसा मैं जानता हूँ और सब चंचलता बालक के कनिष्ट हैं। बालक सब से अधिक चंचल है। जैसे मन चंचल है, तैसे ही बालक चंचल है मन का रूप बालक है।

हे मुनीश्वर! जैसे वेश्या का चित्त भी एक पुरुष में नहीं ठहरता, तैसे ही बालक का चित्त भी एक पदार्थ में नहीं ठहरता। इस पदार्थ से मेरा नाश होगा, ऐसे विचार भी उसको नहीं और इससे मेरा कल्याण होगा, सो विचार भी उसे नहीं। वह पड़ा २ चेष्टा करता है और सदा दीन रहता है तथा सुख की इच्छाओं से तपायमान रहता है। जैसे ज्येष्ठ आसाढ़ में पृथ्वी तपायमान् होती है तैसे ही बालक तपता रहता है और उसको शान्ति कभी नहीं होती है। इसके पीछे जब विद्या पढ़ने लगता है, तब गुरु से ऐसा डरता है, जैसे कोई यम को देख कर डरे। गरुड़ को देखकर जैसे सर्प भय पाता है, तैसे ही यह जीव भी भयभीत हो जाता है। जब शरीर को कोई कष्ट आकर प्राप्त होता है तो वह बड़े २ दुःखों को प्राप्त होता है। परन्तु दुःख को भी समर्थ नहीं होता और सहने को भी समर्थ नहीं। बीच में पड़ा २ जलता है और न

मुख से कुछ बोल सकता है। जैसे वृक्ष कुछ नहीं बोल सकता और जैसे अन्य तीर्यक् योनि में दुःख पाता है। तथा कह नहीं सकता और दुःख का निवारण भी नहीं कर सकता, न संहार कर मकता है बीच में पड़ा २ जलता है, तैसे ही बालक गूँगा होकर दुःख पाता है।

हे मुनीश्वर! ऐसी जो बालक अवस्था है उसकी स्तुति करने वाला मूर्ख है। क्योंकि यह तो परम दुःख रूप अवस्था है। इसमें विवेक विचार कुछ नहीं। एक मात्र खाने को माँगता और रुदन करता है ऐसी अवगुण रूप अवस्था मुझको नहीं सुहाती। जैसे बिजली और जल के बुदबुदे स्थिर नहीं रहते तैसेही बालक भी स्थिर कभी नहीं होता।

हे मुनीश्वर! यह महा मूर्ख अवस्था है, कभी कहता है—हे पिता! मुझको बरफ का टुकड़ा भूनकर दो कभी कहता है मुझे चन्द्रमा उतार दो। ये सब मूर्खता के बचन हैं। इससे ऐसी मूर्खावस्था

को मैं अंगीकार नहीं करता। जैसे दुःख का अनु-भव बालक को होता है वह हमारे स्वप्न में भी नहीं आता। तात्पर्य यह है कि बाल्यावस्था में बड़ा दुःख होता है। यह बाल्यावस्था अवगुणों का भूषण है। जो अवगुणों से शोभित होती है ऐसी नीच अवस्था को मैं अंगीकार नहीं करता। इसमें गुण कोई भी नहीं।

इति श्री योग वाशिष्ठे वैराग्य प्रकरणे मुरादावाद निवासी कन्हैयालाल मिश्र कृत भाषाटीकायां बाल्यावस्था वर्णनं नाम चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥

—*—

पंचदशः सर्गः

(अथ युवा गारुणी वर्णनम्)

श्रीरामचन्द्र बोले—हे मुनीश्वर! दुःख रूपी बाल्यावस्था के अनंतर जब युवावस्था आती है, तब इसको कामरूपी पिशाच आकर लगता है। वह कामरूपी पिशाच युवा अवस्था रूपी गन्दे में आकर

स्थित होता है चित्त को फिराता और इच्छा को फैलाता है। जैसे सूर्य के उदय होने से सूर्यमुखी कमल खिल जाता है और पखुरियों को पसारता है, तब फुरती हैं और काम रूपी पिशाच इस कोखी में डाल देता है, वहाँ पड़ा २ दुःख पाता है। जैसे किसी को अग्नि के कुण्ड में डाल दिया जाये, और वह दुःख पावे, तैसे ही यह जीव काम के वश होकर दुःख पाता है।

हे मुनीश्वर ! जो कुछ विकार है, सो सब युवा वस्था में आकर प्राप्त होता है। जैसे धनवान को देख कर निर्धन धन की आशा करते हैं, तैसे ही युवा अवस्था को देख कर सब दोष आकर इकट्ठे होते हैं और जो भोग को सुख रूप जानकर भोग की इच्छा करता हैं, सो वह परम दुःख का कारण है। जैसे मद्य का घट भरा हुआ देखने मात्र से तो सुन्दर लगता है, परन्तु उसका पान करने से मनुष्य उन्मत्त हो जाता है। पुनः दीनता और निरादर को

पाता है। तैसे ही यह भोग देखने मात्र से तो सुन्दर मालूम होता है, परन्तु जब उनको भोगता है, तो तृष्णा से उन्मत्त होकर पराधीन हो जाता है।

हे मुनीश्वर! काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार यह सब जो चोर हैं, सो युवावस्था रूपी रात्रि को देखकर लूटते हैं और आत्मज्ञान रूपी धन को ले जाते हैं। तिससे यह दीन होता है। यह पुरुष आत्मानन्द के वियोग से दीन हुआ है। हे मुनीश्वर! ऐसी जो दुःख देने वाली युवा अवस्था है, तिसको मैं अंगीकार नहीं करता। शांति चित्त स्थित करने के लिये है, सो चित्त युवा अवस्था में विषयों की ओर दौड़ता है। जैसे बाण लच्य की ओर जाता है। उसको विषय का संयोग होता है। सो विषय की तृष्णा निवृत्त नहीं होती और तृष्णा के मारे जन्म से जन्मान्तर रूपी दुःख को पाता है। हे मुनीश्वर! ऐसा दुःख दायक युवा अवस्थाकी मुझको इच्छा नहीं।

हे मुनीश्वर! जितने दुःख हैं सो सब युवा

अवस्था में आकर प्राप्त होते हैं। काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, चपलता इत्यादिक जो दुःख हैं, वे सब युवा अवस्था में स्थिर होते हैं, जैसे प्रलय काल में रोग आकर स्थिर होते हैं, तैसे ही युवा अवस्था में सब उपद्रव आकर मिलते हैं और क्षण भंगुर हैं। जैसे बिजली की चमक होकर छिप जाती है और जैसे समुद्र की तरङ्गे उठती हैं, तैसे ही युवा अवस्था आकर फिर मिट जाती है। जैसे स्वप्नमें कोई स्त्री विकार से छली जाती है, तैसे ही अज्ञान से युवा अवस्था लुट जाती है।

हे मुनीश्वर ! युवा अवस्था जीव का परम शत्रु है। जो पुरुष शत्रु के शस्त्र से बचे हैं वे धन्य हैं। इसके शस्त्र काम, क्रोध हैं, जो इनसे छूटगया है वह वज्र के प्रहार से भी छेदा न जावेगा। जो इससे बँधा हुआ है वही पशु है।

हे मुनीश्वर ! युवा अवस्था देखने में तो सुन्दर है परन्तु भीतरसे तृष्णाद्वारा जर्जरित है जैसे

वृक्ष देखने में तो सुन्दर होवे, और भीतर से घुन लगा हुआ हो वैसे ही युवावस्था जो योग के निमित्त यत्न करती है, सो वह भोग आपत्ति युक्त है। कारण कि यह जब तक इन्द्रिय और विषय का संयोग है, तब तक अविचार से, भला लगता है और जब वियोग हुआ, तब दुःख होता है। इस भोग से मूर्ख प्रसन्न और उन्मत्त होते हैं—उनको शान्ति नहीं होती और मन में सदा तृष्णा रहती है। स्त्री की इच्छा रहती है जब उस वनिता का वियोग होता है तब उसके स्मरण से जलता है। जैसे वनका वृक्ष अग्नि में जलता है, तैसे ही युवा अवस्था से इष्ट वियोग होने से जीव जलता है। जैसे उन्मत्त हाथी साँकल से बँध कर स्थिर होता है और कहीं जा नहीं सकता, तैसे ही कामरूपी हाथी को साँकल रूपी युवावस्था बाँध लेती है। युवा अवस्था रूपी एक नदी है उसमें इच्छा तरङ्गें उठती हैं—इस कारण मनुष्य शांति को नहीं पाता।

हे मुनीश्वर ! यह युवा अवस्था बड़ी दुष्टनी है चाहे कोई कैसा ही बड़ा बुद्धिमान् और प्रसन्न चित्त पुरुष क्यों न हो, तो भी उसकी बुद्धि को युवावस्था मलिन कर देती है। जैसे निर्मल जल की बड़ी नदी वर्षा काल के आने पर मलिन हो जाती है, तैसे ही युवावस्था में बुद्धि भी मलिन हो जाती है।

हे मुनीश्वर ! इस शरीर रूपी वृक्ष में युवावस्था रूपी वल्ली प्रगट होती है। जब वह बड़ी पुष्टि होती है तब चित्त रूपी भौंरा उसमें आकर बैठता है। वह तृष्णा रूपी उसकी सुगन्ध से उन्मत हो जाता है और सब विचार भूल जाता है। जैसे प्रबल पवन सूखे पत्ते को उडा कर ले जाता है, और रहने नहीं देता, तैसे ही जब युवावस्था आती है, वैराग्य संतोषादिक गुणों का अभाव कर देती है। और दुःख रूपी कमल को युवावस्था रूपी सूर्य है। युवावस्था के उदय से सब दुःख प्रफुल्लित हो

जाते हैं। इससे सब दुखों का मूल युवा अवस्था है। जैसें सूर्यके उदय से सूर्यमुखी कमल खिल जाते हैं, तैसे ही चित्तरूपी कमल संसार रूपी पंखुरी और सत्यता रूपी सुगन्ध से खिल जाता है और तृष्णा रूपी भौंरा तिस पर आकर बैठता है तथा विषय की सुगन्ध लेता है।

हे मुनीश्वर ! संसार रूपी जो रात्रि है, उसमें युवावस्था रूपी तारागण प्रकाशित होता है। कारण कि यह शरीर युवावस्था से सुशोभित होता है और युवावस्था शरीर को जर्जरित कर देती है। जैसे धान के छोटे २ वृक्ष तब तक ही रहते हैं जब तक उसमें फूल नहीं आते और जब फूल आते हैं तब वे सूखने लगते हैं। और जब अन्न के कण परिपक्व होते हैं, तब अन्न के छोटे वृक्ष जर्जरी भाव को प्राप्त होते हैं। उनकी हरियाली नहीं रह सकती। तैसी ही जब तक जवानी नहीं आती, तब तक शरीर सुन्दर कोमल रहता है और जब जवानी

आती है तब शरीर कठिन हो जाता है। फिर परिपक्व होकर क्षीण होने लगता है और वृद्धता को प्राप्त होता है।

हे मुनीश्वर! ऐसी दुःख की मूल रूप युवावस्था है जिसकी मुझको इच्छा नहीं। जैसे समुद्र से पूर्ण है, तरङ्गों को पसारता है और उछलता है तो भी मर्यादा में रहता है और युवावस्था तो ऐसी है, कि शास्त्र की मर्यादा और लोक की मर्यादा मेट कर चलती है और उसे अपना बिचार नहीं रहता। जैसे अंधकार में पदार्थ का ज्ञान नहीं रहता तैसेही युवावस्था में शुभ अशुभ का ज्ञान नहीं रहता। जिसको बिचार नहीं रहा, उसको शांति कहाँ से हो? वह सदा व्याधियों में जकड़ा रहता है; जैसे जल बिना मत्स्य को शान्ति नहीं होती, तैसे बिचार के बिना पुरुष सदा जलता रहता है।

जब युवावस्था रूपी रात्रि आती है, तब काम पिशाच आकर गरजता है। उससे मनुष्य को यही

सकल्प उठते हैं कि कोई कामी पुरुष आवे, उसको साथ में यही चर्चा करूँ। हे मित्र ! यह स्त्री कैसी सुन्दर है और उसके कैसे सुन्दर कटाक्ष हैं, यह किस प्रकार से मुझे प्राप्त होवै। हे मुनीश्वर ! ऐसी इच्छा से वह सदा जलता ही रहता है। जैसे मरुस्थल की नदी को देखकर मृग दौड़ता है, और जल की अप्राप्ति से जलता है। तैसे ही कामी पुरुष बिषय की बासना और शांति नहीं पाता।

हे मुनीश्वर ! मनुष्य जन्म उत्तम है परन्तु जो अभागे हैं, उनको विषय से आत्मपद की प्राप्ति नहीं होती। जैसे चिन्तामणि को प्राप्त कर उसका निरादर करे और उसको जाने नहीं, तथा डाल दे, तैसे ही जिस पुरुष ने मनुष्य शरीर पाकर आत्मपद नहीं पाया, वह बड़ा अभागा है और मूर्खता से अपने जीवन को व्यर्थ खो डालता है और युवा-वस्था में परम दुःख का क्षेत्र अपने लिये होता है और जितने बिकार युवावस्था में हैं, सो सब आकर

उसको प्राप्त होते हैं। मान, मोह, मद इत्यादिक विकार से पुरुषार्थ का नाश होता है।

हे मुनीश्वर ! ऐसी युवावस्था बड़े बिकार को प्राप्त करती है। जैसे नदी वायु से अनेक तरङ्ग पसारती है, तैसे ही युवावस्था चित्त के अनेक काम को उठाती है। जैसे पक्षी पंखों से बहुत उड़ता है, जैसे सिंह भुजा के वल से पशु के मारने को दौड़ता है, तैसे ही चित्त युवावस्था से विक्षेप की ओर दौड़ता है॥

हे मुनीश्वर ! समुद्र का तैरना कठिन है क्योंकि उसमें जल अगाध है और बिस्तार भी बड़ा है तथा उसमें मच्छी, कच्छ, मगर, बड़े २ देहधारी रहते हैं ऐसे दुस्तर समुद्र को तैरना मैं सुगम मानता हूँ। परन्तु युवावस्था में तैरना महा कठिन है। कारण कि युवावस्था में निर्दोष रहना महा कठिन है। ऐसी संकट वाली जो युवावस्था है, तिसमें जो पुरुष चलायमान नहीं होते, वे धन्य

हैं और बंदना करने योग्य हैं। हे मुनीश्वर! यह युवावस्था चित्त को मलिन कर डालती है, जैसे जल की बावड़ी के निकट राख और काँठे पड़े होवें, तो पवन के चलने से वे सब बावड़ी में आकर गिरते हैं, तैसे ही पवन रूपी युवावस्था दोष रूपी धूर काँटो को चित्त रूपी बावडी में डाल के मलिन कर देती है। ऐसे अवगुणों से पूर्ण जो युवावस्था है उसकी इच्छा मुझको नहीं है।

हे युवावस्थे! मेरे ऊपर यह कृपा करो कि मुझे तुम्हारा दर्शन नहीं होवे। तुम्हारे आगमन को मैं दुःख का कारण मानता हूँ। जैसे पुत्र के मरने निमित्त नहीं देखता, तैसे ही तेरे आने में मैं सुख का निमित्त नहीं देखता। इससे मुझ पर दया करनी चाहिये। जो तुम्हारा दर्शन न होवै।

हे मुनीश्वर! इस युवावस्था का तैरना महा कठिन है, जो कोई युवा हो सो नम्रता संतोष, शांति इन से सम्पन्न पुरुष दुर्लभ है, जैसे आकाश

में फूल होना विचार आश्चर्य है। तैसे ही युवावस्था में वैराग्य, विचार, शांति, संतोष पाना बड़ा आश्चर्य-जनक है। इस लिये मुझसे वही उपाय कहिये कि जिससे युवावस्था के दुःखों से मुक्ति हो जाय और आत्मपद की प्राप्ति होवे।

इति श्री योगवाशिष्ठे वैराग्य प्रकरणे मुरादावाद निवासी कन्हैयालाल मिश्र कृत भाषाटीकायां युवा गारुणी वर्णनं नाम पञ्चदशः सर्गः ॥ १५ ॥

—※—

षोडशः सर्गः

(अथ स्त्री दुराशा वर्णनम्)

श्रीरामचन्द्रजी बोले—हे मुनीश्वर! जिस काम विलास के निमित्त पुरुष स्त्री की इच्छा करता है, सो वह स्त्री अस्थि मांस, रुधिर, मूत्र, विष्ठा से पूर्ण है। इसकी पुतली बनी हुई है। वह तागे के द्वारा अनेक चेष्टायें करती है तैसे ही इस अस्थि मांसा-

दिक की पुतली में कुछ और नहीं है। जो विचार से नहीं देखता उसको रमणीय दिखाती है। जैसे पर्वत के शिखा दूर से सुन्दर और गङ्गा माला सहित भासते हैं तथा निकट से आसार हैं, बड़े २ पत्थर ही दीखते हैं तैसे ही स्त्री वस्त्र और भूषणों से सुन्दर भासती है। और उनके अङ्गों को भिन्न २ विचार कर देखा जाय तो सार कुछ नहीं है। जैसे नागिनी के अङ्ग बहुत कोमल होते हैं परन्तु उसको स्पर्श करे तो काट कर मार डालती है। तैसे यदि कोई मनुष्य स्त्री को स्पर्श करे तो वह उसे मार डालती है। जैसे विष का वेल देखने से सुन्दर लगती है, परन्तु स्पर्श करने से जलती है। जैसे जंजीर से बँधा हुआ हाथी जिस द्वार पर होता है वह तहाँ ही, स्थिर रहता है, तैसे ही अज्ञानी का जो चित्त रूपी हाथी है वह काम रूपी जंजीर से बँधा हुआ स्त्री रूप एक स्थान में स्थिर रहता है। वहाँ से कहीं जा नहीं सकता और जब हास्ति के महावत अंकुश को

प्रहार करते हैं, तब वह बन्धन को तोड़ के निकल जाता है। तैसे ही यह चित्तरूपी मूर्ख जो हस्ति है, सो महावत रूपी गुरु के उपदेश रूपी अंकुश का वारम्बार प्रहार सहन करता है। तब यह निर्बल हो जाता है।

हे मुनीश्वर! कामी पुरुष जो स्त्री की इच्छा करता है, वह अपने नाशके ही निमित्त करता है। जैसे कदली वन का हस्ती कागज की हस्तिनी को देख कर छल से बंधन में आकर परम दुःख पाता है, तैसे ही परम दुःख का मूल स्त्री का संग है।

हे मुनीश्वर! जैसे वन के दाह की अग्नि सबको जलाती है, तैसे ही स्त्री रूपी अग्नि उसमें अधिक है। क्योंकि मनुष्य उस अग्नि के स्पर्श करने से तप्त होते हैं, स्त्री रूपी अग्नि तो स्मरण मात्र से जलाती है और जो सुख रमणीय दीखता है सो आया तरणीय है। जब स्त्री के सुख का वियोग होता है तब मुरदे की भाँति हो जाता है

और उस काल में वह शवकी समान होता है।

हे मुनीश्वर ! यह शरीर अस्थि मांस रुधिरका एक पिंजरा है, सो वह अग्नि में भस्म हो जायगा पशु पक्षियों के खाने का आहार होवेगा। जिनको देख कर पुरुष प्रसन्न होता है, ऐसे प्राण आशा ही में लीन हो जाते हैं। इससे स्त्री की इच्छा करनी मूर्खता है। जैसे अग्नि की ज्वाला के ऊपर श्यामता होती है, तैसे ही स्त्री के शीश के ऊपर श्यामता केश हैं। जैसे अग्नि के स्पर्श करने से पुरुष जलता है, तैसे ही स्त्री के स्पर्श करने से भी जलता है इस लिये जलना दोनों में तुल्य है।

हे मुनीश्वर ! इसको नष्ट करने वाली स्त्री रूपी अग्नि है जो स्त्री की इच्छा करते हैं, वे महा मूर्ख अज्ञानी हैं और अपने नाश के निमित्त ही इच्छा करते हैं। जैसे पतङ्ग अपने नाश निमित्त दीपक की इच्छा करता है, तैसे ही कामी पुरुष अपने नाश के निमित्त ही स्त्री की इच्छा करता है।

हे मुनीश्वर ! स्त्री रूपी विष की एक बल्ली है और हाथ पाँव उसके पत्र हैं, भुजा डाली है, अस्थि रूप इसके गुद्दे हैं, नेत्रादिक इन्द्रिय उसके फूल हैं, ऐसी आधिभौतिक विष वेल पर कामी पुरुष रूपी भौंरे आकर बैठते हैं, और वहाँ काम रूपी धीवर ने स्त्री रूपी जाल फैला रक्खा है, उस पर कामी पुरुष रूपी पक्षी आकर फँसते हैं। काम रूपी धीवर उनको फँसा कर अत्यन्त कष्ट देता है निदान ऐसे दुःख देने वाली स्त्री की जो इच्छा करता है, वह महा मूर्ख है।

हे मुनीश्वर ! स्त्री रूपी सर्पिणी है जब उसकी फुंकार निकलती है, तब उसके निकट कमल फूल सब जल जाते हैं ऐसी स्त्री रूपी सर्पिणी है, उसकी इच्छारूपी जो फुंकार निकलती है उससे वैराग्यरूपी कमल जल जाते हैं। जब सर्पिणी डसती है, तब विष चढ़ता है जहाँ स्त्री रूपी सर्पिणीकी चितौनी करी तहाँ अन्तर से आपही विष चढ़ जाता है।

हे मुनीश्वर ! जैसै धीवर छल करके मछली को फँसाता है, तैसे ही कामी पुरुष मच्छीवत सुन्द्र स्त्री रूप जाल को देखकर फँसता है और स्नेह रूपी तागे से बन्धन पाकर खिंचता चला जाता है और फिर तृष्णारूपी काम मार डालता।

हे मुनीश्वर ! ऐसी दुःख को देने वाली स्त्री की मुझको इच्छा नहीं। फिर काम रूपी धरती है, तिसमें रागरूपी इन्द्रिय का जाल बिछाया है। यह कामी पुरुष रूपी मृग को आसक्त कर डालती है और स्त्री की स्नेह रूपी डोरी है, तिससे कामी पुरुष रूपी बैल बँधा है और स्त्री का मुख रूपी जो चन्द्रमा है, तिसको देखकर कामी पुरुष रूपी कमलिनी खिल जाती है। जैसे चन्द्रमुख कमल चंद्रमा को देख कर प्रसन्न होते हैं, और सूर्यमुखी नहीं होते, तैसे ही यह कामी पुरुष भोग से प्रसन्न होते हैं किन्तु ज्ञानवान् प्रसन्न नहीं होते। जैसे नेवला सर्प को बिल में से निकाल कर मारता

है, तैसे ही कामी पुरुष को स्त्री आत्मानन्द में से निकाल कर मार डालती है। जब स्त्री के निकट जाता है, तब वह उसको भस्मकर डालती है। जैसे सूखे तृण और घृत को अग्नि भस्म कर डालती है तैसे ही कामी पुरुष को स्त्री रूपी नागिनी भस्म कर डालती है।

हे मुनीश्वर ! स्त्री रूपी जो रात्रि है, तिसका स्नेह रूपी अन्धकार है। तिसमें काम क्रोधादिक उलूक और पिशाच हैं।

हे मुनीश्वर ! जो स्त्री रूपी खड्ग के प्रहार से युवा रूप संग्राम से बचा है, वही पुरुष धन्य है। उसको मेरा नमस्कार है। स्त्री का संयोग परम दुःख का कारण है। इस लिये मुझको इनकी इच्छा नहीं।

हे मुनीश्वर ! जो रोग होता है, तिसके अनुसार ही पुरुष औषधि करता है, तभी रोग निवृत होता है और कोई कुपथ्य देने से उसका नाश होता

है। रोग बढ़ जाता है। अतएव मेरे रोग के अनुसार उसकी औषधि कीजिये।

मेरा रोग सुनिये—जरा और मृत्यु का मुझको बड़ा रोग है—तिनके नाश की औषधि मुझको दीजिये और स्त्री आदिक जो भोग हैं, जैसे अग्नि में घृत डाला जाय, तब वह बढ़ जाती है, तैसे ही भोग से जरा मृत्यु आदि रोग बढ़ते हैं। इस वास्ते इस रोग की निवृत्ति की औषधि कीजिये। नहीं तो मैं सबका त्याग करके वन में जा रहूँगा।

हे मुनीश्वर! जिसके स्त्री है उसको भोग की इच्छा भी होती है और जिसके स्त्री नहीं उसको स्त्री की इच्छा भी नहीं होती। जिसने स्त्री का त्याग किया है, तिसने मानो संसार का भी त्याग किया है और वही सुखी है। संसार का बीज स्त्री है, अतएव मुझको स्त्री की इच्छा नहीं, वरन् मुझको वही औषधि दीजिये जिससे जरा मृत्यु आदि रोग की निवृत्ति होवे।

इति श्री योगवाशिष्ठे वैराग्य प्रकरणे मुरादाबाद निवासी कन्हैयालाल मिश्र कृत भाषाटीकायां स्त्री दुराशा नाम षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥

सप्तदशः सर्गः

(अथ जगवस्था वर्णनम्)

श्रीरामचन्द्रजी बोले—हे मुनीश्वर ! बालक अवस्था तो महा जड़ तथा अशक्त है और जब युवावस्था आती है तब बाल्यावस्था को ग्रहण कर लेती है। तिसके अनन्तर वृद्धावस्था आती है। तब शरीर जर्जरीभूत हो जाता है और बुद्धि क्षीण हो जाती है। फिर मृत्यु को पाता है। हे मुनीश्वर ! इस प्रकार अज्ञानी का जीना व्यर्थ है। किसी अर्थ की सिद्धि नहीं जैसे नदी के तट पर वृक्ष होते हैं, सो जल के प्रवाह से जर्जरीभूत हो जाते हैं, तैसे ही वृद्धावस्था में शरीर जर्जरीभूत हो जाता है। जैसे पवन से पत्ता उड़ जाता है, तैसे ही वृद्धावस्था में शरीर का नाश होता है। जितने रोग हैं-सब वृद्धावस्था में आकर प्राप्त होते हैं और शरीर कृश हो जाता है तथा स्त्री पुत्रादिक सब वृद्ध को त्याग

देते हैं। जैसे पके फल को वृक्ष त्याग देता है, तैसे ही वृद्ध को कुटुम्ब त्याग देता है और सब देखकर हँसते हैं। जैसे बावले को देखकर लोग हँस कर बोलते हैं कि इसकी बुद्धि सब जाती रही, जैसे कमल फूल के ऊपर वरफ पड़ता है, तथा कमल जर्जरी भूत हो जाता है तैसे जरावस्था में पुरुष जर्जरी भाव को प्राप्त होता है और शरीर कुबड़ा हो जाता है। केश सफेद हो जाते हैं। शक्ति क्षीण हो जाती है। जैसे चिरकाल का बड़ा वृक्ष होता है, तिस में घुन होता है--तैसे ही शक्ति कुछ नहीं रहती।

हे मुनीश्वर! और भी सब कृति क्षीण हो जाती है। परन्तु एक अशक्ति मात्र रहती है। जैसे बड़े वृक्ष पर उलूक आकर रहते हैं, तैसेही इसमें क्रोध शक्ति आकर रहती है और शक्ति सब क्षीण हो जाती है।

हे मुनीश्वर! जरावस्था दुःख का घर है। जब जरा अवस्था आती है, तब सब दुःख इकट्ठे होते हैं।

तिससे मनुष्य महा दीन हो जाते हैं और युवावस्था में जो काम का बल रहता है, सो जरा में क्षीण हो जाता है। तथा इन्द्रिय की शक्ति घट जाती है उस से चपलता का अभाव हो जाता है। जैसे पिता के निर्धन होने से पुत्र दीन हो जाता है और जैसे शरीर के निर्बल होने से इन्द्रिय भी निर्बल हो जाती है, ऐसे ही तृष्णा उन्मत्त होकर बढ़ जाती है।

✓ हे मुनीश्वर! जब जरारूपी रात्रि आती है तब खाँसी रूपी गीदड़ आकर शब्द करते हैं और आधि व्याधि रूपी उलूक आकर निवास करते हैं। हे मुनी-श्वर! ऐसी जो नीच वृद्धावस्था है उसकी मुझको इच्छा नहीं है। यह देह जरा के आश्रय से कुबड़ा हो जाता है। जैसे पक्के फल से वृक्ष झुक जाता है, तैसे ही जरा के आने से देह कुबड़ा हो जाता है। जो युवावस्था में स्त्री पुत्रादिक चाहते और टहल करते थे, वे सब उसको त्याग देते हैं। जैसे वृद्ध बैल को बैल वाला त्याग देता है, तैसे ही इसको

बन्धु त्याग देते हैं, और देख के हँसते तथा अपमान करते हैं। उनको वह ऊँट की नाईं भासता है।

हे मुनीश्वर! ऐसी जो नीच वृद्धावस्था है, उसकी मुझको इच्छा नहीं। अब आप जो कुछ कर्तव्य मुझसे कहो; वह मैं करूँ। इस शरीर की तीनों अवस्था में कोई सुखदायक नहीं है। क्योंकि बाल्यावस्था महा मूढ़ है और युवावस्था महा बिकारवान् है तथा जरावस्था महा दुःख का पात्र है, बाल्यावस्था को युवावस्था ग्रास कर लेती है, युवावस्था को मृत्यु ग्रास कर लेती है, यह अवस्था सब अल्प काल की हैं इनके आश्रय से मुझको क्या सुख होता है? इस वास्ते आप मुझसे वही उपाय वर्णन कीजिये कि जिसके द्वारा मैं इस दुःख से छुटकारा पाऊँ।

हे मुनीश्वर! जब जरा अवस्था आती है तब मरना भी निकट आता है। जैसे सन्ध्या के आने से रात्रि आ जाती है। जो सन्ध्या के आने से दिन की इच्छा करते हैं, वे मूर्ख हैं। तैसे ही जरा के

आने से जीवन की आशा रखनी महा मूर्खता है।

हे मुनीश्वर! जैसे बिल्ली ताका करती है कि चूहा आवे, तो पकड़ लूँ, तैसे ही मृत्यु देखती रहती है कि जरावस्था आवै, तो मैं इसको गपचलूँ। जरावस्था मानो काल की सखी है, रोगरूपी नशा लेकर शरीर रूपी मांस को सुखाती हैं। तब इसका स्वामी काल आकर इसको भोजन कर लेता है और शरीर रूपी घर है, उसका स्वामी काल है। काल जब घर में आता है तब उसके आगे पटरानी भी आती हैं! पहिली आशक्तता, दूसरी अङ्ग में पीड़ा और तीसरी खाँसी जो शीघ्र श्वास को चलाती है और श्वेत केश होते हैं, वे चमर की नाईं झुलते हैं ऐसी जो काल की सहेली है, वह प्रथम ही आकर प्रवेश करती है और जरा रूपी कैवगलसे शरीर को बनाती है, तब जो उसका स्वामी काल है, वह आकर प्रवेश करता है।

हे मुनीश्वर! जो परम नीच अवस्था है सो

जरा ही है, वह बन आती है, तब शरीर जर्जरी भूत कर देती है, देह काँपने लगती है और शरीर को निर्बल तथा क्रूर कर देती है। जैसे कमल पर बरफ की वर्षा हो और वह जर्जरीभूत हो जाय, तैसे ही शरीर को जर्जरी भूत कर डालती है। जैसे वन में बाघन आकर शब्द करती और मृग का नाश कर देती है, तैसे ही खाँसी रूपी बाघन आकर मृग रूपी वन का नाश करती है।

हे मुनीश्वर! जब जरा आती है, तब मृत्यु प्रसन्न होती है। जैसे चन्द्रमा के उदय से कमलिनी खिल जाती है, तैसे ही मृत्यु प्रसन्न होती है। यह जरावस्था बड़ी ही दुष्ट है, जो बड़े २ योद्धा हुए हैं; इसने उनको भी दीन कर दिया है यद्यपि उस बड़े शूरों ने संग्राम में शत्रु को जीता है किन्तु उनको भी जराने जीत लिया है और जिन्होंने बड़े २ पर्वतों के चूर कर डाले हैं तिनको भी जरा पिशाचिनी ने महा दीन कर दिया है। सारांश यह जरा रूपी जो

राक्षसी है, उसने सबको ही दीन कर दिया है और वह सबको जीतने वाली है।

हे मुनीश्वर! यह जरा शरीर में अग्नि की नाईं लगती है, जैसे अग्नि वृक्ष को लगती है और धूम निकलता है, तैसे ही शरीर रूपी वृक्ष में जरा रूपी अग्नि लगने से तृष्णारूपी धुआँ निकलता है। जैसे डिब्बे में बड़े रत्न रहते हैं, तैसे ही जरा रूपी डिब्बे में दुःख रूपी अनेक रत्न हैं। जरारूपी मानों वसन्त ऋतु है--तिस से शरीर रूपी वृक्ष दुःख रूपी रस से पूर्ण होता है। जैसे हस्ती साँकल से, बँधा हुआ पुरुष दीन हो जाता है तथा अङ्ग सब शिथिल हो जाते हैं, बल क्षीण हो जाता है, और इन्द्रियाँ भी निर्बल हो जाती हैं। तथा शरीर जर्जरी भावको प्राप्त होता है, परन्तु तृष्णा नहीं घटती वरन् नित्य बढ़ती ही चली जाती है। जैसे रात्रि आती है तब सूर्यवंशी कमल सब मुँद जाते हैं और पिशाचिनीं आकर विचरने लगती तथा प्रसन्न होती है, तैसे ही

जरा रूपी रात्रि के आने से सब शक्ति रूप कमल मूँद जाते हैं और तृष्णा रूपी पिशाचिनी प्रसन्न होती है।

हे मुनीश्वर ! जैसे गङ्गा के तट पर वृक्ष रहते हैं, सो गङ्गा जल के वेग से जर्जरी भूत हो जाते हैं, तैसे ही जो आयु रूपी प्रवाह चलता है, तिसके वेग से शरीर जर्जरी भूत हो जाता है। जैसे मांस के टुकड़े को देख आकाश से उड़ती चील नीचे आकर ले जाती है, तैसे ही जरावस्था में शरीर रूपी मांस को काल ले जाता है अतएव हे मुनिश्रेष्ठ ! यह शरीर तो काल का ग्रास बना हुआ है ! जैसे वृक्षको हस्ती खा जाता है, तैसेही जरा वाले शरीर को काल देखकर खा जाता है। इसमें सन्देह नहीं।

इति श्री योगवाशिष्ठे वैराग्य प्रकरणे मुरादाबाद निवासी कन्हैयालाल मिश्र कृत भाषाटीकायां जरावस्था निरूपणं नाम सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥

अष्टादशः सर्गः

(अथ काल वृतांत वर्णनम्)

श्रीरामचन्द्रजी बोले--हे मुनीश्वर ! संसार रूपी एक गर्त्त है, उसमें अज्ञानी गिरा है। वह संसार गर्त्त अल्प है और अज्ञानी तो बड़ा हो गया है। संकल्प विकल्प की अधिकता से बढ़ा है और जो ज्ञानवान् पुरुष हैं, वह संसार को मिथ्या जानते हैं फिर संसार रूपी जाल में फँसता नहीं। जो अज्ञानी पुरुष हैं, वह संसार को सत्य जानकर उसके आस्था-रूपी जाल में फँसता है और वह संसार के भोग की इच्छा करता है। जैसे दर्पण में प्रतिबिम्ब देखकर बालक उसको पकड़ने की इच्छा करता है, तैसे ही अज्ञानी पुरुष संसार को सत्य जानकर जगत् के पदार्थों की इच्छा करता है कि वे मुझे मिल जावे, यह मुझे अच्छा नहीं लगता, इत्यादि फिर भी जो सुख है, नाशात्मक है। अभिप्राय यह है कि जो

आता है वह जाता है। स्थिर कभी नहीं रहता। काल सबको ग्रास कर लेता है। जैसे पके अनार को चूहा खा जाता है, तैसे ही सब पदार्थों को काल खा जाता है।

हे मुनीश्वर! जितने पदार्थ हैं वे सब कालके ग्रसित हैं। बड़े बड़े बली सुमेरु जैसे गम्भीर बल वाले पुरुषों के ग्रास काल ने किये हैं। जैसे सर्प को नेवला भक्षण कर जाता है, तैसे ही बड़े महाबली का ग्रास काल कर जाता है, और जगत् रूप एक गूलर का फल है, उसमें मज्जा ब्रह्मादिक देवता हैं, फल के वृक्षों का जीवन है, सो ब्रह्मरूप है, उस ब्रह्मरूप वन में जितने कुछ वन हैं, वे सब इसका अहार हैं, काल सबको भक्षण कर जाता है।

हे मुनीश्वर! यह काल बड़ा बलिष्ठ है, जो कुछ देखने में आता है, वह सब इसने ग्रास कर लिया है तो फिर अन्य की बात ही क्या कहनी है। हमारे जो बड़े ब्रह्मादिक देवता हैं, उनको भी काल

ग्रास जाता है। जैसे मृग का ग्रास सिंह कर लेता है। और काल को कोई भी नहीं जान सकता। क्षण, घड़ी, प्रहर, दिन, मास और वर्षादिक ये सब काल ही हैं। काल की मूर्ति प्रगट नहीं है, उसका रूप अप्रगट है। वह और किसी को स्थिर होने नहीं देता। काल ने जो बेल फैलाई है, उसकी त्वचा रात्रि है, फूल दिन है और जीव रूपी भौंरे उस पर आकर बैठते हैं।

हे मुनीश्वर ! जगत् रूपी जो गूलर का फूल है उसमें जीव रूपी मच्छर बहुत रहते हैं। उस फल का भक्षण भी काल कर जाता है। जैसे अनार का भक्षण तोता कर लेता है और जगत् रूपी जो वृक्ष है उसके जीव रूपी अनेक पत्र हैं। उनको काल रूपी हस्ती भक्षण कर जाता है, और शुभ आशुभ रूपी भौंरों को काल रूपी सिंह छेद छेद कर खाता है।

हे मुनीश्वर ! यह काल महा क्रूर है, वह किसी पर दया नहीं करता। सबका ही भोजन कर

जाता है जैसे मृग सब कमल को खा जाता है, उससे कोई बचता नहीं। परन्तु एक कमल उससे बच जाता है। वह कमल कैसा है, जिसके भाँति और मैत्री दो अंकुर हैं; चेतना मात्र जिससें प्रकाश है, इसी कारण वह कमल बचा है। सो काल रूपी मृग इसके पास पहुँच नहीं सकता। इसमें प्राप्त हुआ काल भी लीन हो जाता है। यह जो कुछ प्रपंच है, सो सब काल के मुख में है—ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, कुबेर, आदि देवता यह सब मूर्ति काल की धरी हुई हैं। फिर काल उनको भी अन्तर्ध्यान कर देता है।

हे मुनीश्वर! उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय यह सब कालही से होते हैं। यह अनेक वार महाकल्पों का भी ग्रास कर लेता है और करता रहेगा। काल को भोजन करने से तृप्ति कभी नहीं होती और न कभी तृप्ति होगी। जैसे अग्नि घृत की आहूती से तृप्ति नहीं होता, तैसे ही समस्त ब्रह्मांड को भोजन करते हुए काल कभी तृप्त नहीं होता और इसका

ऐसाही स्वभाव है। जो इन्द्रको भी दरिद्री कर देता है और दरिद्री को इन्द्र कर देता है। सुमेरु को राई बना देता है और राई को सुमेरु करता है, सब से बड़े ऐश्वर्य वाले को नीच कर डालता है, नीचको ऊँच कर डालता है, और बूँदका समुद्र कर डालता है, समुद्र का बूँद करता है, ऐसी अमोघ शक्ति काल में है। जीव रूपी जो मत्स्य है, उसको काल शुभाशुभ कर्म रूपी छुरे से छेदता रहता है। जो काल कूप का चक्र है, जीव रूप हाँड़ी को शुभ अशुभ कर्म रूपी रस्सी से बाँधकर फिराता रहता है। यह काल जीव रूपी वृक्ष को रात्रि और दिन रूपी कुहरा से छेदता है।

हे मुनीश्वर! जो कुछ यह जगत बिलास दीखता है, सो काल सबको ग्रहण कर लेगा और जीव रूपी रत्न का काल डिब्बा है, वह अपने उदर में जीवों को डालता जाता है और खेल करता रहता है तथा चन्द्र सूर्य रूपी गेंद को कभी ऊपर उछालता है और कभी नीचे डालता है तथा उत्पत्ति

प्रलय के जो पदार्थ हैं, उनमें स्नेह किसी के साथ नहीं करता। परन्तु उन पदार्थों के नाश करने को काल में भी सामर्थ्य नहीं है। जैसे मुण्डों की माला महादेवजी गले में पहरते हैं तैसे ही यह जीवों की माला गले में डालता है।

हे मुनीश्वर ! जो बड़े २ बलिष्ठ हैं उनको भी काल ग्रहण कर लेता है। जैसे समुद्र बड़ा है उसको बड़वाग्नि पान कर लेता है और जैसे पवन भोजपत्र को उड़ाता है वैसा ही काल का बल है, किसी की सामर्थ्य नहीं जो इस के आगे स्थिर रहे।

हे मुनीश्वर ! शान्ति गुण प्राधान्य जो देवता और रजोगुण प्राधान्य जो बड़े राजा हैं तथा तमोगुण प्राधान्य जो दैत्य राक्षस हैं, उनमें किसी की सामर्थ्य नहीं, जो उसके आगे रहें। जैसे बटलोई में अन्न और जल भरकर चढ़ाने से वे फिर उछलते हैं और अन्न के दान कर्छी फिराने से एक जगह हो जाते हैं, तैसे ही जीव रूपी अन्न के दाने जगत् रूपी बटलोई में पड़े हुए राग द्वेष रूपी अग्नि पर

चढ़े हैं और कर्म रूपी कर्त्री के चलाने से कभी ऊपर को जाते हैं कभी नीचे को जाते हैं।

हे मुनीश्वर ! यह काल किसी को स्थिर नहीं होने देता। यह महा कठोर है। दया किसी पर नहीं करता। इसका भय मुझको सदा लगता रहता है इससे वह उपाय मुझसे कहिये जो मैं काल से निर्भय हो जाऊँ ?

इति श्री योगवाशिष्ठे वैराग्य प्रकरणे मुरादावाद निवासी कन्हैयालाल मिश्र कृत भाषाटीकायां कालवृत्तान्त निरूपणं नाम अष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥

एकोनविंशतितमः सर्गः

(अथ काल विलास वर्णनम्)

श्रीरामचन्द्रजी बोले—हे मुनीश्वर ! काल बड़ा बलिष्ठ है, जैसे राजाके पुत्र शिकार खेलने जाते हैं, तब वनके पशु पक्षी खेद को प्राप्त होते हैं, तैसे ही यह संसार रूपी जो वन है, उसमें प्राणी मात्र पशु

पक्षी हैं। जब काल रूपी राजपुत्र तिसमें सिकार खेलने आता है, तब सब जीव भय भीत हो जाते हैं और जर्जरी भूत होते हैं। फिर वह उन्हीं को मारता है।

हे मुनीश्वर! यह काल महाभैरव है। सबको ग्रास कर लेता है। प्रलय कालमें सबका प्रलय कर डालता है तथा इसकी जो कालिका शक्ति है, उसका बडा उदर है। वह कालिका सबका ग्रास कर पीछे से नृत्य करती है। जैसे वनके मृग को सिंह और सिंहनी भक्षण करके नृत्य करते हैं, तैसे ही जगत् रूपी वन में जीव रूपी मृग का भोजन करके काल और कालिका नृत्य करते हैं। इनसे अनेक बार जगत् का प्रादुर्भाव होता है, यह नाना प्रकार के पदार्थों को हरते हैं। पृथ्वी, बगीचे, बावड़ी आदि सब पदार्थ इन्हीं से उत्पन्न होते हैं, और सुन्दर जीवों की उत्पत्ति भी इनसे ही होती है। किसी समय उनका नाश भी कर देते हैं। सुन्दर समुद्र रचकर फिर उसमें अग्नि भी लगा देते हैं तथा सुन्दर कमल को

बनाकर फिर उस के ऊपर बरफ की वर्षा भी करते हैं इत्यादि नाना पदार्थों को रचकर उनका नाश करते हैं जहाँ बड़े २ स्थान बन रहे हैं, उनको उजाड़ कर डालते हैं और फिर उजाड़ में बस्ती कर देते हैं तथा नाश भी करते हैं। स्थिर रहने किसी को नहीं देते, जैसे बाग में बानर आकर वृक्ष को ठहरने नहीं देता, तैसे ही काल रूपी बानर किसी पदार्थ को स्थिर रहने नहीं देता।

हे मुनीश्वर! इस प्रकार से सब पदार्थ कालसे जर्जरी भूत होते हैं उनका मैं आश्रय किस रीति से करूँ? मुझको तो सब नाशरूप दीखते हैं, अतएव अब मुझको किसी जगत् के पदार्थ की इच्छा नहीं।

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्य प्रकरणे मुरादाबाद निवासी कन्हैयालाल मिश्रकृत, भाषाटीकायां काल निरूपणं नाम एकोन विंशतितमः सर्गः ॥ १९ ॥

विंशतितमः सर्गः

अथ काल जुगुप्सा वर्णनम्

श्रीरामचन्द्रजी बोले—हे मुनीश्वर! इस काल का बड़ा पराक्रम है। इसके तेजके सन्मुख रहने को कोई भी समर्थ नहीं है। क्षण भर में ऊँच को नीच और नीच को ऊँच कर डालता है, इसका निवारण कोई कर नहीं सकता। सब इसी के भय से काँपते हैं। यह महा भयंकर है। सब विश्व का ग्रास कर लेता है और इसकी जो चण्डि रूप शक्ति है वह बड़ी बलवान है। वह नदी रूप है, उसका उलङ्घन कोई नहीं कर सकता और महाकाल रूप काली है, उस का बड़ा भयानक आकार है और काल रूप जो रुद्र है, उससे अभिन्न रूपी कालिका है, सो सबका पान कर लेती है। पीछे भैरव और भैरवी नृत्य करते हैं।

वह काल कालिका कैसे हैं। जिनका आकार बड़ा है और आकाश जिसका शीश है। जिनका पाताल चरण है। दशों दिशायें जिनकी भुजायें हैं,

सप्त समुद्र जिनके हाथ में कंकण हैं, सम्पूर्ण पृथ्वी रूप जिनके हाथमें पात्र है, तिन के ऊपर जीव हैं, सो भी जनके योग्य हैं। हिमालय और सुमेरु पर्वत दोनों कान में बड़े रत्न हैं। चन्द्रमा सूर्य जिनके लोचन हैं और सब तारागण उनके मस्तक में बिन्दु हैं और हाथ में त्रिशूल तथा मूसल आदि शस्त्र हैं और जिनके हाथमें तन्द्रा रूपी फाँसी है उससे जीव को मारते हैं। ऐसे काल और कालिका देवी है जो कालिका देवी है सो सब जीवों का ग्रास कर के महा भैरव जो रुद्र हैं उनके आगे नृत्य करती है तथा अट्ट अट्ट ऐसा शब्द करती है और जीवों को भी जन करके उनकी रुण्ड माला गले में धारण करती है वह भैरव के आगे नृत्य करती है और भैरव कैसे हैं जिनके बल सन्मुख रहने की शक्ति किसी में न रही है। जहाँ उजाड़ है, तहाँ क्षण में बस्ती कर डालते हैं और जहाँ बस्ती है तहाँ क्षणमें उजाड़ कर देते हैं इसी से उसका नाम देव कहते हैं

और उनकी कृतान्त भी कहते हैं। बड़े पदार्थ उप- जते हैं और उनका नाश भी होता है स्थिर किसी को रहने नहीं देता इसी से इसका नाम कृतान्त हैं। और नित्य रूपी भी यही है जो इसे आदि धरा है वही कर्ता और कर्म रूप है। क्योंकि जिसका परि- णाम अनित्य रूप है, इसी से इसका कर्म नाम है। सो कैसे नाश करता है ? जब अभाव रूपी धनुष हाथ में धरता है, तिससे राग द्वेष रूपी बाण चलाता है। उस बाण से जर्जरीभूत करके नाश करता है और उत्पत्ति नाश में उसको यत्नभी कुछ करना नहीं पडता है। इसको तो खेल जैसा है जैसे बालक मृत्तिका की सेना बनाता है और फिर उठकर नाश भी कर देता है, तैसे ही काल को उपजाने और नाश करने में यत्न करना नहीं पड़ता है।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे वैराग्य प्रकरणे कन्हैयालाल मिश्र कृत भाषा टीकायां काल जुगुप्सा वर्णनं नाम विंशतितमः सर्गः ॥ २० ॥

—— * ——

एकविंशतितमः सर्गः

अथ काल विलास वर्णनम्

श्रीरामजी बोले—हे मुनीश्वर ! जो कुछ पदार्थ दीखते हैं, सो सब नाश रूप हैं, इसलिये मैं किसकी इच्छा करूँ और किसका आश्रय करूँ। इनकी इच्छा करनी मूर्खता है और जो कुछ चेष्टा अज्ञानी करता है वह सब दुःख के निमित्त है और जीवित रहने से अर्थ की सिद्धि कुछ नहीं होती। क्योंकि जो बालक अवस्था होती है, तब मूढ़ता रहती है, विचार कुछ नहीं रहता और जब युवा अवस्था आती है, तब मूर्खता से दुर्व्यसनों में पड़ जाते हैं और मान मोहादिक विकारों से मोह जाते हैं उनमें भी बिचार कुछ नहीं रहते। फिर दीन का दीन रह के विषय की तृष्णा करता है। शान्ति को नहीं पाता।

हे मुनीश्वर ! आयुष्य महा चंचल है। और मृत्य निकट है। उसका अन्यथा भाव नहीं होता।

हे मुनीश्वर ! जितने कुछ भोग हैं, सो रोग हैं और जिसको संपदा जानते हैं सो आपदा है तथा जिसको सत्य कहते हैं वह असत्य रूप है और जिस स्त्री पुत्रादिक जो मित्र जानते हैं, सो सब बन्धन के कर्त्ता हैं, इन्द्रिय महा शत्रु रूप हैं, सो सब मृग तृष्णा के समान हैं और यह देह विकार रूप है, मन मोह चञ्चल और सदा अशांति रूप हैं, अहंकार महा नीच है इसने ही दीनता को प्राप्त किया है। इसको जितने पदार्थ सुखदायक प्रतीत होते हैं सो सब दुःखके देनेवाले हैं तिससे इसको शान्ति कभी नहीं होती। इस लिये मुझको इनकी इच्छा नहीं। यद्यपि देखने में सुन्दर मालूम होते हैं, तो भी इनमें कुछ सुख नहीं है कोई पदार्थ स्थिर रहने का नहीं। जैसे समुद्र में नाना प्रकार की तरंगे उठती हैं, और वे सब बड़वाग्नि से नाश हो जाती हैं, तैसे ही यह पदार्थ भी नाश को प्राप्त होते हैं। अपनी आयु के लिये कैसे आस्था करूँ ?

हे मुनीश्वर ! बड़े २ समुद्र जो दृष्टिमें आते हैं और सुमेरु आदि जो बड़े २ पदार्थ हैं सो सब नाश को प्राप्त होते हैं। तब हम सरीखों की क्या बात है ? काल के सामने और बड़े २ दैत्यों की भी कोई बात नहीं है और जो देवता सिद्ध, गंधर्व भी नाश को प्राप्त होते हैं। पृथ्वी, जल, अग्नि जो दाहक शक्ति धरने वाले है और पवन जो है सो वीर्य सहित सब नाश हो जायँगे, कुछ उनकी सत्यता भी न रहेगी और जो यम, कुबेर, वरुण, इन्द्र, बड़े तेज वाले हैं, वह भी सब नाश हो जायेंगे और तारामंत जो दृष्टि में आते हैं, सो सब गिर पड़ेंगे। जैसे सूखे पत्ते वायु लगने पर वृक्ष से गिर जाते हैं तैसे ही तारे गिरेंगे तो फिर हम सरीखों की क्या बात है ?

हे मुनीश्वर ! ध्रुव जो स्थिर रहता है वह भी अस्थिर हो जायेगा तथा अमृतमय मंगल का चन्द्रमा दृष्टि में आता है तथा सूर्य अखण्ड मण्डल है, जिसका ऐसा प्रकाश संयुक्त दृष्टि में आता है, वह भी

नाश हो जावेंगे। यह षटैश्वर्यवान् जगत् के अधि-ष्ठाता ईश्वर हैं, जो उनका भी आभाव हो जाता है। महाभैरवरूप जो रुद्र हैं, सो भी शून्य हो जायेंगे और काल जो सबको भक्षण करने वाला है, सो भी टुकड़े २ होकर नाश को प्राप्त होगा। काल की स्त्री जो नित्य है, सो भी अनित्यता को प्राप्त होगी और सबका आधार जो आकाश है, सो भी नाश हो जा-येगा तथा जितना कुछ जगत् से अर्थ सिद्ध होता है, सो सब नाश हो जावेगा, कोई भी स्थिर रहने का नहीं। तब हम किसकी आस्था करें? किसका आश्रय करैं? यह जगत् सब भ्रममात्र है। अज्ञानी की इसमें आस्था होती है। किन्तु हमारी नहीं है। जो जगत् भ्रम के समान उत्पन्न हुआ है सो मैं इतना जानता हूँ। संसार में सब ओर दुःख ही दुःख ब्याप्त हो रहा है। सुख कुछ भी नहीं है।

हे मुनीश्वर! इसका जो परम शत्रु अहंकार है इससे यह भटकता फिरता है। जैसे रस्सी में

बँधा हुआ पतंग कभी ऊपर और कभी नीचे जाता है, स्थिर कभी नहीं रहता, ऐसे ही जीव अहंकार करके कभी ऊपर और कभी नीचे जाता है। जैसे घोड़ों के रथ पर बैठ कर सूर्य आकाश मार्ग में भ्रमता है, तैसे ही यह जीव भी भ्रमता है। हे मुनीश्वर! यह जीव परमार्थ सत्य स्वरूप से भूला हुआ भटकता है और अज्ञान से संसार में आया करता है तथा भोग को सुख रूप जानकर उसमें तृष्णा करता है किन्तु जिसको सुख रूप जानता है, सो रोग के समान है और जैसे विष से पूर्ण सर्प जीव का नाश करनेवाले हैं और जिनको सत्य जानता है सो असत्य है सब काल के मुख में ग्रसे हुए हैं।

हे मुनीश्वर! यह जीव विचार के बिना अपना नाश आपही करता है। क्योंकि जो इसका कल्याण करने वाला बोध है, जो सत्य बिचार बोध की शरण में जाय तो कल्याण हो अस्तु जितने

पदार्थ हैं उनमें स्थिर कोई नहीं इनको सत्य जानना दुःख के कारण हैं।

हे मुनीश्वर! जब तृष्णा आती है, तब आनन्द और धैर्य को नाश कर देती है जैसे वायु मेघ का नाश कर डालता है तैसे ही तृष्णानाश कर डालती है। इस लिये मुझ से वही उपाय कहो कि जिससे जगत् का भ्रम मिट जावे और अविनाशी पद की प्राप्ति हो। इस भ्रम रूप जगत् की आस्था मैं नहीं देखता। इससे वैसी ही इच्छा करूँ, परन्तु सुख दुःख इसी को होते हैं, सो होंगे मिटेंगे नहीं चाहे पहाड़ की कन्दरा में बैठो, चाहे कोट में बैठो, परन्तु जो होने को है सो मिथ्या नहीं होगा। इस लिये यत्न करना मूर्खता है।

इति श्री योग वाशिष्ठे वैराग्य प्रकरणे मुरादाबाद निवासी कन्हैयालाल मिश्रकृत भाषा टीकायां काल विलास वर्णनं नाम एक विंशतितमः सर्गः ॥ २१ ॥

द्वाविंशतितमः सर्गः

अथ सर्व पदार्थभाव वर्णनम्

श्रीरामचन्द्रजी बोले—हे मुनीश्वर! यह जो नाना प्रकार के सुन्दर पदार्थ प्रतीत होते हैं सो सब नाशवान् हैं इनकी आस्था मूर्ख लोग किया करते हैं। यह तो केवल मन की कल्पना से बचे हुए हैं, उनमें किसकी आस्था करूँ?

हे मुनीश्वर! अज्ञानी जीव का जीवन व्यर्थ है, क्योंकि उनके जीवन से अर्थ सिद्ध कुछ नहीं होता। जब कुमार अवस्था आती है, तब मूढ़ बुद्धि होती है। उसमें विचार कुछ नहीं होता जब युवा अवस्था आती है, तबकामक्रोधादिक विचार उत्पन्न होते हैं। उनसे प्राणी हमेशा ढका रहता है। जैसे जल में पक्षी बँध जाता है और आकाशमार्ग को देख नहीं सकता, तैसी ही क्रोधादिकों से ढका हुआ यह जीव विचार मार्ग को देख नहीं सकता। जब वृद्धावस्था

आती है, तब शरीर जर्जरी भूत होकर महा दीन हो जाता है और शरीर प्राणको भी त्याग देता है। जैसे कमल के ऊपर जब बरफ पड़ता है, तो उसको भौंरा त्याग देता है, तैसे ही जब शरीर रूपी कमल को बुढापे का स्पर्श होता है, तब जीव रूपी भौंरा उसको त्याग देता है।

हे मुनीश्वर ! यह शरीर तब तक ही सुन्दर मालूम होता है, जब तक वृद्धावस्था प्राप्त नहीं होती। जैसे चन्द्रमा के प्रकाश को राहु दैत्य आवरण नहीं करता। वह तब तक ही रहता है, जब तक राहु दैत्य चन्द्रमा को आवरण करता है तब प्रकाश नहीं रहता। तैसे ही जरावस्था के आने पर युवा अवस्था की सुन्दरता जाती रहती है।

हे मुनीश्वर ! जरा के आने से शरीर कृश हो जाता है और तृष्णा बढ़ जाती है जैसे वर्षाकाल में नदी बढ़ जाती है, तैसे ही जरा अवस्था में तृष्णा बढ़ जाती है और जो पदार्थ की तृष्णा करता

है सो पदार्थ भी दुःख रूप। तृष्णा के द्वारा आपही दुःख पाता है।

हे मुनीश्वर! तृष्णा रूपी समुद्र है, उसमें चित्त रूपी बेड़ा पड़ा है। वह राग द्वेष रूपी मत्स्यों करके कभी कभी ऊपर को जाता है और नीचे आता है, स्थिर कभी नहीं रहता।

हे मुनीश्वर! काम रूपी वृक्ष है, तिसमें तृष्णा रूपी लता लगती है, और उसमें विषय रूपी फूल है, जब जीव रूपी भार उसके ऊपर बैठते हैं, तब विषय रूपी व्यल से वह मृतक हो जाते हैं।

हे मुनीश्वर! तृष्णा रूपी एक बडी नदी है। उसमें राग द्वेषादिक बड़े मत्स्य रहते हैं, उस नदी में पड़े हुए जीव दुःख पाते हैं और जो संसार की इच्छा करता हैं सो नाश रूप है।

हे मुनीश्वर! उन्मत्त हस्ती और तुरङ्ग के समूह के समान ऐसा जो नर रूपी समुद्र उसको तर जाते

हैं, उसको भी मैं शूर नहीं मानता। परन्तु जो इन्द्रिय रूपी समुद्र कि जिसमें मनोवृत्ति रूपी तरङ्ग उठती हैं ऐसे समुद्र को जो तर जाता है, उसको शूर मानता हूं। जिसके परिणाम में दुःख हो, तैसे ही क्रिया अज्ञानी जीव आरम्भ करते हैं और जिसके परिणाम में सुख है, उसका आरम्भ नहीं करते और काम के अर्थ को धारण करते हैं ऐसे काम के आरम्भ करने से शरीर की शान्ति नहीं होती। ऐसे ही कामना से सदा जलते रहते हैं, और अनात्म पदार्थ की तृष्णा करते हैं, सो शान्ति को कैसे प्राप्त होवें ?

हे मुनीश्वर ! यह तृष्णारूपी एक नदी है उसमें बड़ा प्रवाह है उसके किनारे पर वैराग्य और सन्तोष दोनों वृक्ष खड़े हैं। इस तृष्णा नदी के प्रवाह से उन दोनों का नाश होता है।

हे मुनीश्वर ! तृष्णा बड़ी चञ्चल है। किसी को स्थिर होने नहीं देती और मोह रूपी एक वृक्ष है,

उसके चारों ओर स्त्री रूपी वल्ली है। सो विषसे भरी हुई है। उस पर चित्त रूपी भौंरा आकर बैठता है। तब उसके स्पर्श मात्र से नाश को पाता है। जैसे मोर की पूँछ हिलती रहती है, तैसे ही अज्ञानी का चित्त चञ्चल रहता है। ऐसे ही मनुष्य भी पशु के समान हैं। जैसे पशु दिन को जङ्गल में आकर आहार करते तथा चलते फिरते हैं और रात्रि को घर में आकर खूँटे से बँधे रहते हैं, तैसे ही मूर्ख मनुष्य भी दिन को घर छोड़ के व्यवहार में फिरते हैं और रात्रि को आकर अपने घर में स्थिर होते हैं। इससे परमार्थ की सिद्धि कुछ नहीं होती, जीवन को वृथा विताते हैं। मनुष्य बालक अवस्था में शून्य रहते हैं और युवावस्था में काम से उन्मत्त होते हैं, वे काम के वशीभूत होकर चित्त-रूपी उन्मत्त होते हैं वे काम कंदरा में जाकर स्थित होते हैं, सो भी क्षण भंगुर हैं। फिर भी वृद्धावस्था प्राप्त होती है। उससे शरीर कृशी हो जाता है। जैसे वर्फ से कमल जर्जरी भाव को प्राप्त होता है,

तैसे ही जरा से शरीर जर्जरी भाव को प्राप्त होता है और सब अङ्ग क्षीण हो जाते हैं तथा एक मात्र तृष्णा बढ़ जाती है।

हे मुनीश्वर! वह पुरुष महा पशु है जो कि आकाश के फल लेने की इच्छा करता है। जब कि ऐसे बड़े पर्वत पर चढ़कर आकाश का फूल लेने की इच्छा करता है, तो वह बड़ी कंदरा और वृक्षों में गिर पड़ता है। तैसे ही यह जीव मनुष्य रूपी पर्वत पर आकर रहता है और आकाश के फूल रूपी जगत् के पदार्थों की इच्छा करता है। इनसे मनुष्य का पतन शीघ्र ही हो जाता है।

हे मुनीश्वर! जितने पदार्थ हैं, सो सब आकाश के फूल के समान नाशमान हैं उन में आस्था करनी मूर्खता है। यह तो शब्द मात्रवत् हैं, उसके द्वारा किसी भी अर्थ की सिद्धि नहीं होती।

जो पुरुष ज्ञानवान् हैं उनको विषय भोग की इच्छा नहीं रहती। क्योंकि वे उनको आत्मा के प्रकाश से मिथ्या जानते हैं।

हे मुनीश्वर ! ऐसे ज्ञानवान् पुरुष दुर्विज्ञेय हैं उनको तो स्वप्न में भी नहीं भासता है और ऐसे यह विरक्तात्मा वाले दुर्लभ हैं कि जो विषय भोग की कामना न करते हों। जिस पुरुष को ब्रह्म की प्राप्ति हो जाती है, उस पुरुष को संसार की कुछ भी इच्छा नहीं रहती। क्योंकि यह सारे पदार्थ नाश रूप हैं।

हे मुनिश्रेष्ठ ! पर्वत को जिस ओर से देखा जाय, पत्थर ही पत्थर दिखाई देते हैं और पृथ्वी मृत्तिका से पूर्ण दिखाई देती है, वृक्ष, काष्ठ से पूर्ण दीखते हैं, समुद्र जलसे भरे हुए दिखाई देते हैं, इसी प्रकार यह देह भी हड्डी और मांस से भरा हुआ दीख पड़ता है। यह सारे पदार्थ पाँच तत्वों के द्वारा पूर्ण और नाशवान् हैं—अतएव ज्ञानी जन जगत् के अनित्य पदार्थों की इच्छा नहीं करते।

हे मुनिसत्तम ! यह संसार अनित्य है, देखते देखते ही इसका नाश हो जाता है—तब फिर मैं

किस पदार्थ का आश्रय करके सुखी होऊँ? युग की हजार चौकड़ी में ब्रह्मा का एक दिन होता है, उस दिन के क्षय होने से जगत् का प्रलय हो जाता है और काल से ब्रह्माजी का भी नाश हो जाता है। तथा ब्रह्मा भी जितने हुए हैं, उनकी गिनती नहीं होती। अनन्त ब्रह्मा मर चुके हैं, तब फिर हम सरीखों की तो बात ही क्या है? हमको किसी भोग की इच्छा नहीं है—क्योंकि कोई पदार्थ भी स्थिर नहीं है, इनमें मूर्ख लोग ही आस्था करते हैं, इनके साथ हमको कुछ प्रयोजन नहीं। जिस प्रकार मृग मारवाड़ की भूमि को देखकर जल पीने को दौड़ता है, किन्तु वह शान्ति को प्राप्त नहीं करता, उसी प्रकार मूर्ख जीव संसार के पदार्थों को सच्चा समझकर तृष्णा करता है अर्थात् शान्ति प्राप्त नहीं करता, क्योंकि संसार असार रूप है।

यह जो स्त्री-पुत्र-कलत्र दिखाई देते हैं, सो जब तक देह का नाश नहीं होता, तब ही तक मालूम

होते हैं। जब शरीर नष्ट हो जाता है, तब संसार के सब झगड़े यहीं धरे रहते हैं, जिस प्रकार तेल और वत्ती से दीपक प्रकाश करता है—तो बड़ा प्रकाशमान दीखता है और फिर बुझ जाने पर दिखाई नहीं देता। तैसे ही वत्ती रूप बांधव हैं और उसमें स्नेह रूपी तेल है। उससे जो शरीर भासता है—वही प्रकाश है।

जब शरीर रूपी दीपक का प्रकाश बुझ जाता है, तब जाना नहीं जाता। हे मुने! वन्धु बान्धवों का मिलाप ऐसा समझिये कि जैसे तीर्थ यात्रा के लिये मनुष्यों का समूह चला जा रहा हो और वह क्षण भर को विश्राम करने के लिये किसी वृक्ष की छाया के नीचे वैठ जाय और फिर तुरन्त ही अलग अलग हो जाय। अतएव जिस प्रकार उस यात्रा में यात्रियों के साथ स्नेह करना व्यर्थ है—तिस २ प्रकार इनसे भी स्नेह करना मूर्खता है।

हे मुनीश्वर! अहं ममता की डोरी से बँधे

हुए घटी यन्त्र [घड़ी] के समान सब भ्रमते फिरते हैं, वे शान्ति कभी नहीं पाते। यह देखने मात्र से तो चेतना दिखाई देता है, किन्तु इससे तो पशु और बन्दर तक भी अच्छे हैं। जिनकी सम्पत्ति, शरीर और इन्द्रियों के साथ बँधी हुई है तथा आगमापायी हुई है। इसमें आस्था रखनी बड़ी ही मूर्खता का काम है उन मनुष्यों को आत्मपद मिलना बड़ा ही दुर्लभ है। वायु और फिर उनके वृक्ष के पत्ते उड़ जाते हैं और फिर उनको वृक्ष के साथ लगाना कठिन है वैसे ही जो पुरुष शरीरादि के साथ बँधे हुए हैं उनके पक्ष में आत्मपद प्राप्त करना कठिन ही नहीं वरन् असम्भव भी है।

हे मुनिश्रेष्ठ ! यह पुरुष जिस समय आत्मपद से बिमुख होता है, तब ही इसको संसार का भ्रम दिखाई देता है और जिस समय आत्मपद की ओर जाता है, तब फिर इसको संसार वर्ष के समान प्रतीत होता है। संसार में कोई भी पदार्थ स्थिर

नहीं है—सबही पदार्थों का नाश हो जाता है। अतएव मुझको किसकी आस्था करनी चाहिए ? जब कि सबही पदार्थों का नाश होने वाला है तब फिर आप मुझको कोई ऐसा पदार्थ बताइये जो नाशवान न होवे।

इति श्री योगवाशिष्ठे वैराग्य प्रकरणे मुरादाबाद निवासी कन्हैयालाल मिश्रकृत भाषा टीकायांसर्व पदार्थाभाव वर्णनं नाम द्वाविंशतितमः सर्गः ॥ २२ ॥
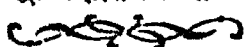
त्रयोविंशतितमः सर्गः

अथ जगद्विपर्यय वर्णनम्

श्रीरामचन्द्रजी बोले—हे मुनीश्वर ! जितना कुछ स्थावर जंगम जगत् दीखता है, सो सब नाश रूप है, कुछ भी स्थिर रहने का नहीं। जो खाई थी सो जल से पूर्ण हो गई है और जो बड़े जल वाले समुद्र दीखते थे सो खाई रूप हो गये और जो बड़े सुन्दर बगीचे थे, सो आकाश की नाईं शून्य हो गये। जो शून्य स्थान थे, सो सुन्दर वृक्ष बन कर दृष्टि आते हैं। जहाँ बस्ती थी, वहाँ उजाड़ हो गया।

और जहाँ उजाड़ था, वहाँ बस्ती हो गई। जहाँ गड्ढे थे, वहाँ पर्वत हो गये और जहाँ बड़े पर्वत थे, वह समान पृथ्वी हो गई। हे मुनीश्वर! इस प्रकार पदार्थ देखते २ बदल जाते हैं, स्थिर नहीं रहते। फिर मैं किसका आश्रय करूँ और किसे पाने का यत्न करूँ। यह पदार्थ तो सब नाश रूप हैं और जो बड़े २ ऐश्वर्य द्वारा सम्पन्न थे, तथा बड़े २ कर्त्तव्य करते थे, एवं बीर्यवान् व तेजवान् थे, सो भी मरण को प्राप्त हो गये हैं तब फिर मुझ सरीखे की क्या बात है? जब कि सब नाश होते हैं, तब मुझको भी घड़ी पल में चला जाना है रहना किसी को नहीं।

हे मुनीश्वर! यह पदार्थ बड़े चंचल रूप हैं, एक रस कभी नहीं रहते, एक क्षणमें कुछ और तथा दूसरे क्षण में कुछ और हो जाते हैं, एक क्षण में दारिद्री और दूसरे क्षण में संपत्तिवान् हो जाते हैं, एक क्षण में जीते दृष्टि आते हैं, दूसरे क्षण में मर जाते हैं, एक क्षणमें मरे भी जी उठते हैं। इस संसार की स्थिरता

कभी नहीं होती। ज्ञानवान् इसकी आस्था नहीं करते। एक क्षण में समुद्र के प्रवाह के ठिकाने मरुस्थल हो जाते हैं और मरुस्थल में जल के प्रवाह हो जाते हैं।

हे मुनीश्वर! इस जगत् का प्रवाह स्थिर नहीं रहता, जैसे बालक का चित्त स्थिर नहीं रहता, तैसे ही जगत् का पदार्थ एक भी स्थिर नहीं रहता, जैसे नट स्वांग को धरता है, सो कभी कैसा, कभी कैसा, एक स्वांग में नहीं रहता तैसे ही जगत् के पदार्थ हैं।

लक्ष्मी एक रस नहीं रहती, कभी पुरुष स्त्री हो जाता है, कभी स्त्री पुरुष हो जाती है और मनुष्य पशू हो जाता है, पशू मनुष्य हो जाता है। स्थावर का जंगम और जंगम का स्थावर हो जाता है। मनुष्य देवता हो जाता है और देवता मनुष्य हो जाता है। इस प्रकार घटायन्त्र की नाईं जगत् की लक्ष्मी स्थिर नहीं रहती। कभी ऊपर को जाती है, और कभी नीचे को जाती है, स्थिर कभी नहीं रहती सदा भटकती रहती है।

हे मुनीश्वर ! जितने कुछ पदार्थ दृष्टि में आते हैं, वे सब नष्ट हो जाने वाले हैं किसी प्रकार भी स्थिर नहीं रहेंगे। यह जो सब नदियाँ हैं सो बड़-वाग्नि में लय हो जायँगी। तैसे ही जितने कुछ पदार्थ हैं, वे सब अभाव रूपी बडवाग्नि को प्राप्त होंगे। बड़े बलिष्ठ भी मेरे देखते २ लीन हो गये और बड़े सुन्दर स्थान शून्य हो गये हैं। तथा जो सुन्दर ताल और बगीचे मनुष्यों से भरे थे वह सूने हो गये हैं और जो मरुस्थल की भूमि थी सो सुन्दरता को प्राप्त हो गई। घट पट हो गये, और शाप वरके व शापके वर हो जाते हैं, इसी प्रकार हे विप्र ! जो जगत दृष्टि में आता है वह कभी संपद्य रूप और आपदा रूप है तथा महा है पल रूप है। हे मुनीश्वर। ऐसे सब अस्थिर रूप पदार्थ है तिनको बिचार के बिना मैं कैसे आश्रय करूँ और किसकी इच्छा करूँ ? सब नाश रूप हैं।

यह जो सूर्य प्रकाशक दृष्टि में आता है, सो

भी अन्धकार रूप हो जायगा, और अमृत से पूर्ण जो चन्द्रमा दृष्टि में आता है, सो भी विष से पूर्ण हो जायेगा और सुमेरु आदि पर्वत जो दृष्टि में आते हैं वे भी सब नाश होंगे, सब लोक नाश हो जायेंगे अर्थात् जब मनुष्य, देवता, यक्ष, राक्षस आदिक सब नाश पावेंगे तब हे मुनीश्वर ! और किसी की बार्ता क्या कहें ? ब्रह्मा, विष्णु जो जगत के ईश्वर हैं वे भी नष्ट हो जायेंगे। तो फिर मुझ सरीखे की बात ही क्या ? जितना कुछ जगत दृष्टि में आता है और जो स्त्री पुरुष, बान्धव, ऐश्वर्य्य वीर्य तथा तेज द्वारा नाना प्रकार के जीव भासते हैं, वे सब नाश रूप हैं। तब फिर मैं किस पदार्थ का आश्रय और इच्छा करूँ ?

हे मुनीश्वर ! जो पुरुष दीर्घदर्शी है उसको तो सब पदार्थ विरस हो गये हैं। वह किसी पदार्थ की इच्छा नहीं करता; क्योंकि उसको सब पदार्थ नाश रूप भासते हैं, और वह अपनी आयुष्य को

बिजली के समान चमकता देखता है, जैसे विजुली का चमत्कार होता है तैसा शरीर का आयुष्य है, जिसको अपने आयुष्य की प्रतीत नहीं होती वह किसी की इच्छा नहीं करता। जैसे किसी को बलि-दान के अर्थ पालते हैं, तब वह खाने पीने भोगने की इच्छा नहीं करता, तैसे ही जिसका अपना मरना सन्मुख भासता है, उसको भी किसी पदार्थ की इच्छा नहीं रहती। बस जब यह सब पदार्थ आप ही नाश रूप हैं तो फिर मैं किसका आश्रय कर के सुखी होऊँ? जैसे कोई पुरुष समुद्र में मत्स्य का आश्रय करके कहे कि मैं इस पर बैठ कर समुद्र पार जाऊँगा और सुखी हूँगा; सो वह मूर्खता करके डूब ही मरेगा। ऐसे ही जिस पुरुष ने इन पदार्थों का आश्रय लिया है और उन्हें अपने सुख के निमित्त जानता है वह नाश को ही प्राप्त हो जायगा।

हे मुनीश्वर! जो परम पुरुष जगत जो विचा-रता रहता है, उसको यह जगत रमणीय भासता है

और वह रमणीय जान कर ही नाना प्रकार के कर्म-करता है तथा नाना प्रकार के संकल्प करके जगत में भटकता है कभी ऊपर और कभी नीचे आता है। जैसे पवन कभी ऊँचे और कभी नीचे आता है स्थिर नहीं रहता तैसे ही यह जीव भटकता हुआ फिरता है स्थिर कभी नहीं रहता और जिस पदार्थ की इच्छा करता है, सो सब काल के ग्रास होने वाले हैं। जैसे वन में अग्नि लगती है, तब सब ईंधनादिको जलाती है, सो जितने कुछ पदार्थ हैं सो सब ईंधन रूपी हैं। जगत रूप वन है तिस में कालरूपी अग्नि लगी है उसने सबको ग्रास किया है, फिर जो पुरुष इस पदार्थ की इच्छा करते हैं, वे महामूढ़ हैं।

जिनको आत्म विचार की प्राप्ति है जिनको यह जगत् भ्रम रूप भासता है और जिनको आत्म विचार की प्रीति नहीं है, उनको यह जगत् रमणीय भासता है और वह जगत देखते हुए नाश हो जाता है तब फिर मैं स्वप्न पुरी की तरह इस संसार की कैसे

इच्छा करूँ ? यह तो दुःख के निमित्त है, जैसे मिठाई में विष मिलाया है और भोजन करने वाले मृत्यु को प्राप्त होते हैं, तैसे ही विषय भोगने वाले लोग नाश को प्राप्त होते हैं।

इति श्रीयोगवासिष्ठे वैराग्य प्रकरणे मुरादाबाद निवासी कन्हैयालाल मिश्रकृत, भाषाटीकायां जगद्विपर्ययवर्णनं नाम त्रयोविंशतितमः सर्गः ॥ २३ ॥

चतुर्विंशतितमः सर्गः

श्रीरामचन्द्रजी बोले—हे मुनीश्वर ! इस संसार में भोग रूपी अग्नि लगी है। उससे सब जलते हैं। भोगों से जीव दीन हो जाता है। जैसे ताल में हाथी के पैर से कमल का चूर्ण हो जाता है, तैसे ही भोग द्वारा मनुष्य दीन हो जाते हैं जैसे वायु से मेघ नष्ट हो जाता है, तैसे ही काम क्रोध दुराचार से शुभगुण नष्ट हो जाते हैं। जैसे कँटारी के पत्ते और फल में काँटे हो जाते हैं, तैसे ही विषय वासना रूपी कंटक आ लगते हैं।

हे मुनीश्वर! यह जगत् सब नाश रूप है किसी पदार्थ का स्थिर रहना नहीं है, वासना रूपी जल और इन्द्रियाँ रूपी गाँठी है, तिसमें पुरुष काल के द्वारा आन फँसा है, सो वड़े दुःख को प्राप्त होगा।

हे मुनीश्वर! वासना रूप सूत में जीव रूपी मोती पिरोये हुए हैं और उसको मन रूपी नटी आकर चैतन्य रूपी आत्मा के गले में डालता है, जब वासना रूपी तागा टूट गया, तब सब भ्रम भी निवृत्त हो जाता है।

हे मुनीश्वर! जिसको भोग की इच्छा है सो वही बंधन का कारण है। भोग की इच्छा से भटकता है, शान्ति को प्राप्त नहीं होता। इसलिये मुझको किसी भोग की इच्छा नहीं। न राज की इच्छा है न घर की न वन की इच्छा है न मरनेसे दुःख मानता हूँ, न जीने से सुख मानता हूँ, किसी पदार्थ का सुख नहीं। सुख जो होता है, सो आत्मज्ञान के द्वारा ही होता है अन्यथा किसी पदार्थ से

नहीं होता जैसे सूर्य्य के उदय हुए बिना अन्धकार का नाश नहीं होता, तैसे ही आत्मज्ञान के बिना दुःख दूर नहीं होता। इसलिये वही उपाय मुझसे कहिये कि जिससे मोह का नाश हो और मैं सुखी होऊँ। हे मुनीश्वर! भोग को भुगतने हारा अहंकार है, सो उसको मैंने त्याग दिया है। फिर भोग की इच्छा कैसे होवे?

हे मुनीश्वर! इस विषय रूपी सर्प ने जिसको स्पर्श किया है, उसका नाश हो जाता है और फिर सर्प जिसको काटते हैं, वह तो एक बार ही मरता है, परन्तु विषय रूपी सर्प जिसको काटता है, वह अनेक जन्म पर्य्यन्त मरता ही चला जाता है। इसलिये परम दुःख का कारण विषय भोग है। अतएव विषय रूपी परम विष है। हे मुनीश्वर! आरे से अङ्ग का काटना सहन हो सकता है और वज्र द्वारा शरीर का चूर्ण होना भी मैं सहूँगा, परन्तु विषयों का भुगतना मुझसे किसी प्रकार भी नहीं सहा जाता।

यह मुझको महा दुःखदायक दीखते हैं। इसलिये मुझसे वही उपाय कहिये कि जिससे मेरे हृदय के अज्ञान रूपी अन्धकार का नाश होवे और यदि आप न कहेंगे, तो मैं अपनी छाती पर धैर्य्य रूपी शिला रखकर बैठा रहूँगा। परन्तु भोगकी इच्छा कभी नहीं करूँगा॥

हे मुनीश्वर! जितने पदार्थ हैं वे सब नाश रूप हैं। जैसे बिजुली का चमत्कार होकर छिप जाता है और अंजलि में जल नहीं ठहरता है, तैसे ही विषय भोग और आयुष्य नाश हो जाती है, ठहरती नहीं जैसे काँटे के द्वारा मछली दुःख पाती है, तैसे ही भोग की तृष्णा से जीव दुःख पाते हैं। इससे मुझको किसी पदार्थ की इच्छा नहीं है। जैसे किसी ने मरीचिका के जल को सत्य जानकर उसके पीनेकी इच्छा करी परन्तु उसको जल नहीं मिलता है बस इसलिये मैं किसी पदार्थ की इच्छा नहीं करता हूँ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे वैराग्य प्रकरणे कन्हैयालाल मिश्र कृत भाषा टीकायां काल सर्वान्त प्रतिपादनं नाम चतुर्विंशतितमः सर्गः॥ २४॥

पञ्चविंशतितमः सर्गः

(वैराग्य योजन वर्णनम्)

श्रीरामचन्द्रजी बोले—हे मुनीश्वर ! संसार रूपी गढे और मोह रूपी कीच में मूर्ख का मन गिर जाता है, उससे वह बड़ा दुख पाता है शान्तिवान् कभी नहीं होता। जब जरा अवस्था आती है तब शरीर जर्जरी होकर काँपने लगता है। जैसे यतन वृक्ष के पत्ते पवन से हिलते हैं तैसे ही जरा अवस्था से अङ्ग हिलते हैं और तृष्णा की वृद्धि होती है जैसे नीम के वृक्ष की कटुता बढ़ती है, तैसे ही तृष्णा बढ़ती है।

हे मुनीश्वर ! जिस पुरुष ने देह इन्द्रियों आदि का आश्रय अपने सुखके निमित्त किया है, वह मूर्ख संसार रूपी अन्धकूप में गिरता है और फिर निकल नहीं सकता और अज्ञानी का चित्त भोग का त्याग भी नहीं करता। हे मुनीश्वर ! जगत के पदार्थों में

मेरी बुद्धि मलीन हो गई है जैसे वर्षाकाल में नदी मलीन हो जाती है, जैसे मार्गशीर्ष मास में मंजरी सूख जाती है, तैसे ही जगत की शोभा देखते देखते विरह हो जाती है, जैसे जगत् का पदार्थ मूर्ख को रमणीय भासता है, जैसे पानी का गढ़ा तृण से आच्छादित होता है, और मृग का छौना उस तृण को रमणीय जानकर खाने लगता है और फिर उस में गिर जाता है, तैसे ही यह मूर्ख भोग को रमणीय जान और भोग कर गिर पड़ते हैं, फिर महा दुःख पाते हैं। जैसे मृग गढ़े पर विचरता है सो सुखी नहीं होता, तैसे ही यह संसार के पदार्थ गढे रूप हैं, इन पर मन रूपी दौड़ने वाला मृग कैसे सुखी रह सकता है ?

हे मुनीश्वर ! जगत के पदार्थों द्वारा मेरी बुद्धि चञ्चल हो गई है, इससे वही उपाय कहो जिससे पर्वत की नाईं मेरी बुद्धि निश्चल होवे। वह पद कैसा है जो परमानन्द के यत्न में रहता है और

निर्भय निराकार है जिसके पाने से संसार कुछ भी नहीं रहता है। तथा फिर पाना कुछ नहीं रहता है, वैसे ही सम्पूर्ण जगत की नाना प्रकार की रचना सब दब जाती है, आप उस पद के पाने का उपाय मुझ से कहिये। हे मुनीश्वर! ऐसे पद से मेरी बुद्धि शून्य है अतएव मैं शान्तिवान् नहीं होता। यह संसार और संसार के कर्म मोह रूप हैं, इसमें पड़े हुए पुरुष शान्ति को प्राप्त नहीं होते। जनकादिक संसार में रहते हुए भी कमल की नाईं निर्लेप रहे हैं, सो जैसे कोई कीच में फसा हो और कहे कि मुझे कीच का स्पर्श नहीं हुआ तैसे ही राज के विक्षेप रूपी कीच में पड़े हुए शान्तिवान् कैसे निर्लेप रहे ? सो कृपा कर कहिये और फिर आप जैसे सन्तजन विषय को भुगतते दृष्टि में आते हैं और जगत् की सब चेष्टा करते हैं वे निर्लेप कैसे रहते हैं ? सो युक्ति कहिये। जैसे आप जल में कमलवत रहते हो सो कहिए। यह बुद्धि तो मोह

के द्वारा मोही जाती है। जैसे ताल में हाथी प्रवेश करता है, और सब पानी मलीन हो जाता है। अतः आप वही उपाय कहिये जिससे बुद्धि निर्मल होवे। यह सन्तोष में बुद्धि स्थिर कभी नहीं रहती। जैसे मूल से कुहारे कटा वृक्ष स्थिर नहीं होता, तैसे ही वासना से कटी बुद्धि स्थिर नहीं रहती। हे मुनीश्वर! संसार की विशूचिका मुझको लगी है, इसलिये वही उपाय कहिये जिससे दृश्य का अभाव होवे, इसने मुझको बड़ा दुःख दिया है और आत्मज्ञान का सब प्रकाश होगा, जिसके उदय होने पर मोहरूपी अंधकार का नाश होवेगा? हे मुनीश्वर! जैसे बादल से चन्द्रमास्थापित होता है, तैसे ही बुद्धि की मलीनता से मैं स्थापित हुआ हूँ। इससे आप वही उपाय कहिये जिससे आवरण दूर हो और जो मुझे आत्मानन्द है, सो नित्य है, जिसके पान से फिर पाना कुछ नहीं रहता। इससे सम्पूर्ण दुःख नष्ट हो जाते हैं और अन्तर शीतल हो जाता है, ऐसा जो पद

है उसकी प्राप्ति का उपाय आप मुझसे कहो। हे मुनीश्वर! आत्मज्ञान रूपी चन्द्रमा की मुझे इच्छा है जिसके प्रकाश से बुद्धि रूपी कमलिनी खिल जाती है और अमृत रूपी किरण से तप्त बुद्धि होती है सो कहो। हे मुनीश्वर! अब मुझको गृह में रहने की इच्छा नहीं और वन जाने की भी इच्छा नहीं वरन् मुझको तो उसी पदकी इच्छा है जिसके पाने से भीतर शान्ति हो जाय और मैं अपने वास्तविक स्वरूप को प्राप्त हूँ।

इति श्री योगवाशिष्ठे वैराग्य प्रकरणे मुरादाबाद निवासी कन्हैयालाल मिश्र कृत भाषाटीकायां वैराग्य योजन वर्णनं नाम पंच विंशतितमः सर्गः॥ २५॥

षड्विंशतितमः सर्गः

(अनन्य त्याग वर्णनम्)

श्रीरामचन्द्रजी बोले—हे मुनीश्वर ! जो जीने की आस्था करते हैं, वे मूर्ख हैं। जैसे पत्र पर जल की बूँद नहीं ठहरती, तैसे ही आयुष्य भी क्षणभंगुर है। जैसे वर्षा काल में झींगुर बोलते हैं, तब उनका कंठ चंचल सदा किकरता रहता है, तैसे ही आयु क्षण २ में चंचल हो जाती है। जैसे शिवजी के कपाल में चन्द्रमा की रेखा सी है तैसा ही यह शरीर है। हे मुनीश्वर ! जिसको इसमें आस्था है, वह महा मूर्ख है क्योंकि यह तो काल का ग्रास है जैसे बिल्ली चूहे को पकड़ लेती है, तैसे ही सबको काल पकड़ लेता है। जैसे बिल्ली चूहे को सम्हाल नहीं करने देती तैसे ही सबको काल अचानक ग्रहण कर लेता है और किसी को दीखता नहीं। हे मुनीश्वर ! जब अज्ञान रूपी मेघ आकर गरजता है, तब लोभ

रूपी मोर प्रसन्न होकर नृत्य करने लगते हैं, जब ज्ञान रूपी मेघ वर्षा करता है, तब दुःख रूपी मंजरी नष्ट हो जाती है। और तृष्णा रूपी जाल में फँसे हुए जीव रूपी पक्षी दुःख पाते हैं, उन्हें शान्ति की प्राप्ति नहीं होती।

हे मुनीश्वर! यह जगत् रूपी बड़ा रोग लगा है उसको निवारण करने का कौनसा पदार्थ है? जो पाने के योग्य है? जिससे भ्रम रूपी रोग निवृत्त होवे। आप वही उपाय कहिये यह जगत् मूर्ख को रमणीय दीखता है, ऐसे पदार्थ पृथ्वी, आकाश तथा देवलोक और पाताल में कोई नहीं, जो ज्ञानवान् को रमणीय दीखे उसको तो सब भ्रम रूप भासता है अज्ञानी ही जगत् में आस्था करता है। हे मुनीश्वर! चन्द्रमा में जो कलंक है तिससे शोभा नहीं लगती। जब कलंक दूर हो जाय, तब सुन्दर लगे। तैसे ही मेरे चित्त रूपी चन्द्रमा में काम रूपी कलंक लगा है, उसे उज्ज्वल नहीं भासता, इससे

वही उपाय आपकहो जिसके द्वारा कलङ्क दूर हो जाय ? हे मुनीश्वर ! यह चित्त बहुत चंचल है स्थिर कभी नहीं होता। जैसे अग्नि में डाला हुआ पारा उड़ जाता है, तैसे ही चित्त भी स्थिर नहीं होता। विषय की तरफ ही सदा दौड़ता है। इसलिये आप वही उपाय कहिये जिससे चित्त स्थिर होवे। संसार रूपी वन में भोग रूपी सर्प रहते हैं, सो जीव को डसा करते हैं। उसने बचने का उपाय कहिये और जितनी कुछ क्रिया हैं, सो राग द्वेष के साथ मिली हुई हैं इससे आप वही उपाय कहिये जिससे राग द्वेष का प्रवेश न होवे। जैसे समुद्र में पड़ा हो और जल का स्पर्श न होय, तैसे ही यह जीव संसार में है अतः जिससे तृष्णा रूपी जल का स्पर्श न होय ऐसा उपाय आप कहो। जिससे मुझको राग द्वेष का स्पर्श न होय, मन में जो मनन रूपी सत्ता है, सो युक्ति द्वारा दूर होती है, अन्यथा दूर नहीं होती। सो निवृत्ति के अर्थ आप मुझको युक्ति बताइये। आगे

जिसको जिस प्रकार से निवृत्ति हुई है और जिस प्रकार आपके अन्तर में शीतलता हुई है सो कहिये। हे मुनीश्वर! जो कुछ आप जानते हैं, सो कहिये और जो आपके विद्यमान होते हुए वह युक्ति नहीं मिली, तो मैं सब त्याग कर निरहंकार हो रहूँगा। जब तक वह युक्ति मुझको प्राप्त न होगी तब तक मैं भोजन नहीं करूँगा और जल पान भी नहीं करूँगा तथा स्नानादि भी नहीं करूँगा। सम्पदा कार्य भी नहीं करूँगा और आपका कार्य भी नहीं करूँगा। निरहंकार होऊँगा और यह न मेरा शरीर है और न मैं शरीर हूँ सब त्याग कर बैठा रहूँगा। जैसे कागज के ऊपर मूर्ति का चित्र होता है, तैसे ही होकर रहूँगा। स्वाँस आते जाते हुए आपही क्षीण हो जायेंगे, जैसे तेल के बिना दीपक बुझ जाता है, तैसे ही अनर्थ बिनादेह निर्वाण हो जायगा। तब महा शान्ति को प्राप्त होऊँगा। वाल्मीकिजी बोले—हे भारद्वाज! इतना कह कर श्रीरामचन्द्र जी चुप

हो रहे। जैसे बड़े मेघ को देखने पर मोर शब्द करके चुप हो जाता है।

इति श्री योगवाशिष्ठे वैराग्य प्रकरणे कन्हैयालाल मिश्र कृत भाषाटीकायां अनन्य त्याग वर्णनं नाम षड्विंशतितमः सर्गः ॥ २६ ॥

सप्तविंशतितमः सर्गः

(अथ देव समाज वर्णनम्)

वाल्मीकिजी बोले—हे पुत्र ! जब इस प्रकार रघुवंश रूपी आकाश के रामचन्द्र रूपी चन्द्रमा ने कहा तब सबही मौन हो गये और सबके रोम खड़े हो गये मानों रोम भी खड़े होकर रामजीके वचन सुनते थे और जितने आदमी सभा में बैठे थे, सब निर्वासना रूपी अमृत के समुद्र में मग्न हो गये। वशिष्ठ, वामदेव, विश्वामित्र आदि जो मुनीश्वर थे और जितने दृष्टि आदिक मन्त्री थे तथा राजा दशरथ और जितने मंडलेश्वर थे तथा जितने नौकर

चाकर थे और माता कौशल्या आदिक सब मौन हो गये और पिंजरे में जो तोते थे, सो भी मौन हो गये तथा बगीचे में जो पशु आदि थे सो भी मौन हो गये और चौपाये तृण खाते ही रह गये एवं जो पक्षी आलय में बैठे थे सो भी सुनकर मौन हो गये और आकाश के पक्षी जो निकट थे सो भी स्थिर हो गये तथा आकाश में जो देव-सिद्ध गन्धर्व, विद्याधर किन्नर थे सो भी आकर सुनने लगे। फलों की वर्षा करने और सब धन्य धन्य शब्द करने लगे तथा फूलों की जो वर्षा हुई सो वह मानों बरफ की वर्षा होती थी और मानों क्षीर समुद्र के तरङ्ग उछलते आते हों और मोतियों की माला की वृष्टि होती आती थी अथवा जैसे माखन के पिंड उड़ते हों, इस प्रकार आधी घड़ी तक फूलों की वर्षा हुई और बड़ी सुगन्ध फैल गई। तथा फलों पर भौंरे फिरने लगे निदान उसका बड़ा ही बिलास हुआ और सब कोई नमो नमः शब्द करने लगे।

देव ने कहा—हे कमल नयन ! रघुवंशी आकाश में चन्द्रमा रूप राम ! तुम धन्य हो ! तुम ने बड़े श्रेष्ठ स्थान देखे हैं और बहुत प्रकार के वचन सुने हैं अतएव जैसे आपने वचन कहे हैं, ऐसे वचन हमने कभी नहीं सुने। इन वचनों को सुन कर हमारा देवतापन का जो अभिमान था, सो सब निवृत्त है और अमृत रूपी वचन सुनकर हमारी बुद्धि भी पूर्ण हो गई है। हे रामचन्द्र ! जैसे वचन तुमने कहे हैं, ऐसे वचन तो वृहस्पति भी नहीं कह सकते बस तुम्हारे वचन परमानन्द के करने वाले हैं इस-लिये तुम धन्य हो !

इति श्री योगवाशिष्ठे वैराग्य प्रकरणे कन्हैयालाल मिश्र मुरादाबादनिवासी कृत भाषा टीकायां देव सिद्ध समाज वर्णनं नाम सप्तविंशतितमः सर्गः ॥ २७ ॥

अष्टाविंशतितमः सर्गः

(अथ सर्व पदार्थभाव वर्णनम्)

वाल्मीकिजी बोले हे भरद्वाज ! ऐसे वचन सिद्धि कहकर विचार करने लगे कि रघुवंश का कुल पूजने योग्य हैं। इस पर भी श्रीरामचन्द्रजी ने बड़े उदार वचन मुनीश्वर के विद्यमान होते हुए कहे हैं, अब जो मुनीश्वर का उत्तर होगा उसको भी सुनना चाहिये। जैसे फूल के ऊपर भौंरे स्थिर होते हैं, तैसे ही व्यास, नारद, पुलह, पुलस्त्य, आदि सब साधु सभामें स्थित हुए तब वशिष्ठ, विश्वामित्र आदि मुनीश्वर उठ के खड़े हुए और उनकी पूजा करने लगे। प्रथम पूजा राजा दशरथजी ने करी। फिर नाना प्रकार से सबने उनकी पूजा करी और यथा योग्य आसन के ऊपर बैठे। अत्यन्त सुन्दर मूर्ति वाले नारदजी हाथ में वीना लेकर बैठे और श्याम मूर्ति व्यासजी आकर बैठे और फिर नाना प्रकार

रंगसे रंजित वस्त्र पहिरे हुए मानों तारागण में महाश्य घटा आई है और दुर्वासा, वामदेव, पुलह पुलस्त्य तथा बृहस्पति के पिता अङ्गिरा और भृगु तथा मैं भी वहाँ था और ब्रह्मर्षि—राजर्षि—देवर्षि देवता, मुनीश्वर, सब आकर सभा में स्थित हुए। किसी के बड़ी जटा है, किसी ने मुकुट धारण किया है, किसी ने रुद्राक्ष की माला पहरी है, किसीने मोतियों की माला पहरी है, किसी के कण्ठ में रत्नों की माला है और हाथ में कमण्डल, मृगछाला और किसी के महा सुन्दर वस्त्र किसी की कटि में कोपीन किसी की कटिमें सुवर्ण की जंजीर, ऐसे महान् तपस्वी आकर वहाँ बैठे। तिनमें कोई राजसी स्वभाव के कोई सात्विक स्वभाव के थे। ऐसे बड़े बड़े ऋषि आये और यह सब विद्वान् वेद पढ़ने हारे थे। इनमें किसीका तेज सूर्य्यवत् किसी का चन्द्रवत् किसी का तारावत् और किसी का रत्नवत् था। ऐसे बड़े प्रकाश वाले पुरुषार्थ पर यत्न करने हारे यथा योग्य आसनों पर स्थित

हुए। उनके बीच में मोहनी मूर्ति राम दीन स्वभाव हो हाथ जोड़ कर सभा में बैठे। उनकी सब ने पूजा की और फिर बोले हे राम! तुम धन्य और कृत कृत्य हो।

नारदजी के सबके विद्यमानता में कहा कि हे राम! तुम ने जो बड़े विवेक और वैराग्य के वचन कहे, सो वे सबको ही प्यारे लगे और वे सबके ही कल्याण करनेहारे तथा परम बोध के कारण हैं। हे रामचन्द्र! तुम बड़े उदारात्मा दृष्टि आते हो, और महा वाक्य का अर्थ भी तुमसे प्रकट होता है ऐसा उज्वल पात्र साधु और अनन्त, तपसी में बिरला ही कोई होता है। और जितने मनुष्य होते हैं, सो वे सब पशु की नाईं दिखाई देते हैं। क्योंकि जिसके संसार समुद्र से पार होने की इच्छा है और जो पुरुषार्थ पर यत्न करता है वही मनुष्य है हे साधो! वृक्ष तो बहुत होते हैं, परन्तु चन्दन का वृक्ष कोई एक ही होता है। तैसे ही शरीर धारी तो बहुत है

परन्तु ऐसा कोई एक ही होता है। सब अस्थि मांस रुधिर के पुतले के साथ मिले हुए भटकते फिरते हैं, सो जैसी यन्त्र की पुतली होती है, तैसे ही वे अज्ञानी जीव हैं और हाथी तो बहुत हैं, जिसके मस्तक में से मोती निकलता है, सो बिरला ही है तैसे ही मनुष्य तो वहुत हैं परन्तु पुरुषार्थ पर यत्न करने हारे कोई विरले ही होते हैं। जैसे वृक्ष तो वहुत हैं परन्तु लवंग का वृक्ष कोई एक ही होता है, जैसे ही पात्र का थोड़ा अर्थ भी वहुत हो जाता है। जैसे तेल की बूँद थोड़ी सी भी जल में डाली हुई फैल जाती है तैसे ही थोड़े बचन जो आपके दिये हैं वहुत होते हैं आपकी बुद्धि बहुत विशेष है और वह दीपक की नाईं प्रकाश पाती है तथा बोध का परम पात्र है। कहने मात्रसे ही आपको शीघ्र ज्ञान होगा और जो हम सब बैठे हैं, सो यदि हमारे

विद्यमान में आपको ज्ञान न होगा, तब जानना कि हम सब मूर्ख ही हैं।

इति श्री योगवाशिष्ठे वैराग्य प्रकरणे मुरादाबाद निवासी कन्हैयालाल मिश्र कृत भाषाटीकायां मुनि समाज वर्णनं नाम अष्टाविंशतितमः सर्गः ॥ २८ ॥

* वैराग्य प्रकरण समाप्त *

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

अथ श्रीयोगवाशिष्ठ

मुमुक्षु प्रकरण प्रारम्भः

शुक निर्वाण

प्रथम सर्ग

सोरठा ।

दशरथ नन्दन राम, मोहि भरोसो आपको ।
पुरवहु सब मन काम, चरण शरन लों आनकर ॥१॥
हे प्रभु ! करुना ऐन, जन दुःख टारन सुखकरन ।
करो हृदय में चैन, दूर होय बाधा सकल ॥ २ ॥
ज्यों वारन को वार, बार न कीन्हीं एक छिन ।
ऐसेहि मोहिं उबार, बार बार विनती करों ॥ ३ ॥
कौशल्या के लाल, पुनि पुनि माँगत वर यही ।
हरिय सकल जंजाल, मिश्र कन्हैयालाल के ॥ ४ ॥

दायक जगकल्यान, है सुमुक्षु सोपान यह।
सुखानन्द की खान, भक्ति करन भव भय हरण ॥१॥

बाल्मीकि जीने कहा—हे साधो! यह जो बचन है सो परमानन्द रूप हैं और कल्याण के कर्ता हैं। इसमें श्रवण की प्रीति तब उपजती है, जब अनेक जन्मों के बड़े पुण्य आकर इकट्ठे होते हैं। जैसे कल्प वृक्ष के फल को बड़े पुण्य से पाते हैं, तैसे ही जिस के बड़े पुण्यकर्म आकर इकट्ठे होते हैं, उसकी प्रीति इन बचनों के सुनने में होती है, अन्यथा नहीं होती। यह बचन परम बोध के कारण हैं। वैराग्य प्रकरण के एक हजार पाँच सौ श्लोक हैं। हे भर-द्वाज! जब इस प्रकार नारद जी ने कहा तब विश्वामित्र जी बोले।

बिश्वामित्रजी ने कहा—हे ज्ञानवानों में श्रेष्ठ राम! जितना कुछ जानने योग्य था, सो तुमने जान लिया है, अब उसमें विश्राम पाने के लिये केवल मजेन करना शेष हैं। जैसे अशद्ध आदर्श (दर्पण) की

मलिनता दूर की जाय तब मुख साफ दीखता है, तैसे ही तुम को कुछ उपदेश की अपेक्षा है।

हे राम! तुम सरीखे भगवान् व्यासजी के पुत्र शुकदेव जी हुए सो वे बड़े बुद्धिमान थे। उन्होंने जो जानने योग्य था, वह जान लिया था, क्योंकि विश्राम के निमित्त उनको भी अपेक्षा थी, सो विश्राम को पाकर शान्तिवान् हो गये थे।

श्रीरामचन्द्र जी बोले! हे भगवान्! शुकदेवजी कैसे बुद्धिमान् और ज्ञानवान् थे तथा उनको विश्राम की अपेक्षा थी, फिर वे कैसे विश्राम को प्राप्त हुए सो कृपा कर वर्णन कीजिये। विश्वामित्र जी ने कहा, हे राम! अंजन के पर्वत की नाईं जिनका आकार है, ऐसे जो भगवान् व्यास जी सो स्वर्ण के सिंहासन पर राजा दशरथ जी के पास बैठे हैं और सूर्य्य की नाईं प्रकाशमान् जिनकी कान्ति है सो इनके ही पुत्र शुकदेवजी थे, जो कि सब शास्त्र के वेत्ता थे सत्य को सत्य और असत्य को असत्य जानते थे, सो उन शान्ति

रूप और परमानन्द रूपको आत्मा में विश्राम मिला। तब उनके मनमें विकल्प उठा कि जिसको मैंने जाना है, सो न होगा, क्योंकि मुझको आनन्द नहीं भासता अस्तु वे इस संशय को धर के एक समय व्यास जी के पास जो कि सुमेरु पर्वत की कन्दरा में बैठे थे, गये और कहने लगे हे भगवन्! यह भ्रमात्मक सब संसार कहाँ से हुआ है इसकी निवृत्ति कैसे होगी? और आगे किसी को इसकी निवृत्ति हुई है या नहीं, सो कहिये।

हे राम! इस प्रकार जब शुकदेवजी ने कहा तब विद्वानों में शिरोमणि वेदव्यास जी ने तत्काल उपदेश किया। तब शुकदेवजी ने कहा हे भगवन्! जो कुछ आपने कहा, सो तो मैं पहले से ही जानता हूँ किन्तु इसके द्वारा मुझको शान्ति प्राप्त नहीं होती।

हे रामजी! जब इस प्रकार शुकदेव जी ने कहा तब सर्वज्ञ वेदव्यास जी विचार करने लगे कि मेरे बचनों से इसको शान्ति प्राप्त न होगी, क्योंकि

इसको अब पिता पुत्र का सम्बन्ध भासता है। ऐसे विचार करके व्यास जी ने कहा—हे पुत्र ! मैं सर्व तत्वज्ञ नहीं हूँ अतएव तुम राजा जनक जी के निकट जाओ वे सर्व तत्वज्ञ और शांतात्मा हैं उनसे तुम्हारा मोह निवृत्त होगा। हे राम ! जब इस प्रकार व्यास जी ने कहा, तब शुकदेवजी वहाँ से चले और राजा जनकजी की मिथिला नगरी में आयकर द्वार पै स्थित हुए तब द्वारपाल ने जाकर जनक जी से कहा कि हे राजन् ! व्यासजी के पुत्र शुकदेवजी द्वार पर खड़े हैं सुनते ही राजा ने जान लिया कि इनको जिज्ञासा है। ऐसा समझ कर कहा खड़े रहो, तब यह खड़े ही रहे। इसी प्रकार द्वारपाल ने जाकर कहा। तब सात दिन खड़े खड़े वीत गये, तब राजा ने द्वारपाल से फिर पूछा कि शुकदेवजी खड़े रहे अथवा चलते रहे हैं? द्वारपाल ने कहा खड़े ही हैं तब राजा ने कहा कि अब आगे ले आओ तब वह आगे ले आया, उस दरवाजे पर भी यह लगातार सात दिन तक खड़े रहे फिर राजा

ने पूछा कि शुकदेव जी हैं या गये ? तब द्वारपाल ने कहा कि खड़े हैं, राजा ने कहा कि अतःपुर में ले आओ और उनको नाना प्रकार के भोग भुगतवाओ। द्वारपाल उसको अन्तःपुर में ले गया। वहाँ स्त्रियोंके पास सात दिन तक खड़े रहे। तब राजा ने द्वारपाल से पूछा कि अब उनकी क्या दशा है ? और पहले क्या दशा थी ? तब उत्तर मिला कि पहले निरादर से शोकवान् न हुए और न अब भोग द्वारा प्रसन्न ही हुए हैं, इष्ट अनिष्ट में समान हैं। जैसे मंद पवन के द्वारा मेरु चलायमान् नहीं होता। जैसे पपैये को मेघ के जल बिना नदी ताल आदि के जल की इच्छा नहीं होती। तब राजाने कहा हाँ अब उनको यहाँ ले आओ। तब द्वारपाल ले आया। जब शुकदेव जी आये तब राजा जनक जी ने उठके खड़े हो प्रणाम किया। फिर दोनों बैठ गये। तब राजा ने कहा कि हे मुनीश्वर ! तुम किस निमित्त यहाँ आये हो और तुमको क्या वांछा है ? सो कहो। उसको मैं पूरा कर दूँ ?

श्रीशुकदेवजी ने कहा—हे गुरु ! यह संसार का आडम्बर कैसे उत्पन्न हुआ ? और फिर कैसे शाँत होगा सो तुम कहो ! विश्वामित्र जी बोले हे राम ! जब इस प्रकार शुकदेवजी ने कहा, तब जनक जी ने यथा शास्त्र उत्तर दिया वह वही था, जो कुछ व्यासजी ने कहा था फिर शुकदेवजी ने कहा हे भगवान् ! जो कुछ आपने कहा है, वही मेरे पिता जी ने कहा था और वही शास्त्र कहते हैं और विचार से मैं जानता भी हूँ कि यह संसार चित्त में उत्पन्न होता है और चित्त की निवृत्ति होती है। फिर भी मुझको विश्राम प्राप्त नहीं होता।

जनकजी ने कहा—हे मुनीश्वर ! जो कुछ मैंने कहा है और जो तुम जानते हो, इससे भी अधिक उपाय कुछ है ? ऐसा जानना नहीं और कहना भी नहीं यह संसार चित्तकी सम्वेदना से हुआ है। जब चित्त फुरने से रहित होता है, तब भ्रम निवृत्त हो जाता है और आत्म तत्व नित्य शुद्ध तथा परमानन्द

स्वरूप हैं। केवल चैतन्य है जब उसका अभ्यास करोगे तब तुम विश्राम को पाओगे। तुम स्वयंही मुक्तिस्वरूप हो, यत्न आत्मा की ओर है, दृश्य की ओर नहीं। इसलिये तुम बड़े उदारात्मा हो। हे मुनी- श्वर! तुम मुझको व्यास जी से भी अधिक जानकर मेरे पास आये हो तुम मुझसे भी अधिक हो, क्यों कि हमारी चेष्टा बाहिर से दीखती है और तुम्हारी चेष्टा बाहिर से कुछ भी नहीं और अन्तर से हमारी इच्छा भी नहीं।

विश्वामित्र जी बोले हे राम! जव इस प्रकार राजा जनक जी ने कहा, तब शुक जी निःसंग निः- प्रयत्न निर्भय होकर चले। और सुमेरु पर्वत की कन्दरा में जाय निर्विकल्प समाधि दश हजार वर्ष तक करी फिर निर्वाण हो गये जैसे तेल के बिना दीपक निर्वाण हो ज़ाता है। तैसे ही निर्वाण हो गये, जैसे समुद्र में बूँद लीन हो जाता है, जैसे सूर्य का प्रकाश सन्ध्या काल में सूर्य्य के पास लीन हो

जाता है, तैसे ही कलना रूप कलंक को त्याग करके ब्रह्म पद को प्राप्त हुए।

इति श्री योगवाशिष्ठे मुमुक्षु प्रकरणे मुरादाबाद निवासी
कन्हैयालाल मिश्र कृत भाषाटीकायां
शुकनिर्वाण नाम प्रथमः सर्ग ॥१॥

द्वितीयः सर्गः

अथ विश्वामित्रोपदेश वर्णनम्।

विश्वामित्रजी बोले—हे राजा दशरथ ! जैसे शुकदेव जी शुद्ध बुद्धि वाले थे तैसे ही श्रीरामचन्द्रजी भी हैं। जैसे शान्ति के निमित्त उनको कुछ मार्जन कर्त्तव्य था, तैसे ही रामचन्द्रजी को भी विश्राम के निमित्त मार्जन चाहिये। क्योंकि जो आवरण करने हारे भोग हैं, तिनकी इच्छा निवृत्त हुई है। और जो कुछ जानने योग्य था, सो जानलिया है। अब हमको कुछ युक्ति करनी है उसके द्वारा उसको विश्राम होगा जैसे शुकदेवजी

की थोड़े मार्जन द्वारा शान्ति की प्राप्ति हुई थी, तैसे ही इनको होगी।

हे राजन्! अब श्रीराचन्द्रजी को भोग की इच्छा स्पर्श नहीं करती। जैसे ज्ञानवान् को आध्यात्मक आदि दुःख स्पर्श नहीं करते। तैसेही श्रीरामचन्द्रजी को भी भोगकी इच्छा स्पर्श नहीं करती। भोग की इच्छा सबको दीन करती है। इसका ही नाम बन्धन है और भोग की वासना क्षय करने का ही नाम मोक्ष है, ज्यों ज्यों भोग की इच्छा करता है त्यों त्यों लघु होता जाता है और ज्यों ज्यों भोग की बासना क्षय होती है, त्यों त्यों बलवान होता है। जब तक इस में आत्मानन्द प्रकाश नहीं होता तब तक विषय की वासना दूर नहीं होती। जब आत्मानन्द प्राप्त होता है, तब विषय वासना कुछ भी नहीं रहती। जैसे मरुस्थल में बल्ली उत्पन्न नहीं होती, तैसे ही ज्ञानवान् विषय में वासना की उत्पत्ति नहीं होती।

हे साधो ! ज्ञानवान् जो विषय भोग त्याग करता है, सो किसी फल की इच्छा करके नहीं करता स्वभाव से ही ज्ञानवान् की विषय वासना चलती रहती है। जैसे सूर्य के उदय होनेपर अन्धकार का अभाव हो जाता है तैसे ही श्रीरामचन्द्र जी को अब किसी भोग पदार्थ की इच्छा नहीं करती है और अब विहित वेद हुए हैं, अब वे विश्राम की इच्छा करते हैं अतएव जो कहैं, सोई करूँ जिससे उनको विश्राम प्राप्त हो।

हे राजन् ! यह जो भगवान् वशिष्ठ जी हैं, इनकी युक्ति के द्वारा वे शान्त होंगे और आगे भी यही रघुवंश कुल के गुरु हैं इनके उपदेश द्वारा आगे भी रघुवंश ज्ञानवान् हुए हैं यह सर्वज्ञ साक्षीरूप और त्रिकालज्ञ हैं, तथा ज्ञान के सूर्य हैं इनके उपदेश से श्रीरामचन्द्र जी आत्मपद को प्राप्त होंगे।

हे वशिष्ठजी ! वह ब्रह्मा का उपदेश आपको याद है कि जब तुम्हारा हमारा विरोध हुआ था। तब

उपदेश किया था और सब ऋषीश्वर तथा वृक्षों द्वारा पूर्ण हैं ऐसे मन्दराचल पर्वत में आकर ब्रह्माजी ने संसार बासना के निमित्त उपदेश किया था और जो तुम्हारा हमारा विरोध था तिसके निमित्त तथा और जीवों के कल्याण निमित्त जो उपदेश किया था सो अब वही उपदेश आप श्रीरामचन्द्र जी को कीजिये क्योंकि यह भी निर्मल ज्ञान के पात्र हैं और ज्ञान विज्ञान तथा निर्मल युक्ति वही है जो शुद्ध पात्र में अर्पित होवे क्योंकि कारण पात्र बिना उपदेश नहीं सुहाता है और जिसमें शिष्य भाव तथा विरक्तता न होवे ऐसे अपात्र मूर्ख को उपदेश करना व्यर्थ हैं और जो विरक्त होवे, तथा शिष्य भाव न होवे, तब भी उपदेश न करना चाहिये। जब दोनों से सम्पन्न होवे तबही करना। पात्र बिना उपदेश व्यर्थ होता है। क्योंकि वह अपवित्र हो जाता है। जैसे गौ का दूध महा पवित्र होता है किन्तु श्वान की त्वचा में डालने से वह अपवित्र हो जाता है तैसे ही अपात्र

को उपदेश करना व्यर्थ है। हे मुनीश्वर ! जो शिष्य वैराग्य से सम्पन्न होता है और उदारात्मा है सो उपदेश के योग्य है। आप बीतराग भय और क्रोध से रहित और परम शान्ति रूप हो। सो आप के उपदेश के पात्र श्रीरामचन्द्र जी ही हैं। वाल्मीकि जी बोले इस प्रकार जब विश्वामित्र जी ने कहा, तब नारद और व्यास आदिक साधु ! साधु ! करने लगे। उस समय राजा दशरथ जी के साथ बड़े बड़े साधु बैठे हुए थे। विश्वामित्रजी बोले कि वृद्ध जी के पुत्र वसिष्ठजी ने उनसे कहा कि हे मुनीश्वर ! जो कुछ आपने आज्ञा की हैं सो हमने मानी है। ऐसा समर्थ कोई नहीं जो सन्त की आज्ञा उलंघन करै। हे साधु ! राजा दशरथ जी के जितने पुत्र हैं, अनेक हृदय में जो अज्ञान रूपी तप है सो मैं ज्ञान रूपी सूर्य्य के द्वारा निवारण करूँगा जैसे सूर्य्य के प्रकाश द्वारा अन्धकार दूर होता है। हे मुनीश्वर ! जो कुछ ब्रह्माजी ने उपदेश किया था मुझको

अखण्ड स्मरण है। जो हो, अब मैं वही उपदेश करूँगा, जिसके द्वारा श्रीरामचन्द्रजी निसंशय पद को प्राप्त होंगे।

वाल्मीकि जी बोले—इस प्रकार वशिष्ठ जी ने विश्वामित्र जी से कहकर फिर मोक्ष का उपाय श्रीरामचन्द्रजी से सब वर्णन किया।

इति श्री योगवाशिष्ठे मुमुक्षु प्रकरणे मुरादाबादनिवासी कन्हैयालाल मिश्र कृत भाषा टीकायां विश्वामित्रोपदेशो नाम द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

तृतीयः सर्गः

(अथ असंख्य सृष्टि प्रतिपादन वर्णनम्)

वशिष्ठजी बोले—हे राम! जो कुछ कमलज ब्रह्माजी ने मुझको जीव के कल्याण निमित्त उपदेश किया है, वह भली प्रकार मेरे स्मरण में आता है। सो आपसे कहता हूँ।

श्रीरामचन्द्रजी बोले—हे भगवन्! कुछेक प्रश्न करने का अवसर आया है, अब आप मेरे एक संशय को दूर कीजिये। जिसे मोक्ष उपाय संहिता कहते हैं, सो सब आप कहोगे, परन्तु यह जो आपने कहा कि शुकदेवजी विदेह मुक्त हो गये, सो ठीक है। किन्तु भगवान् व्यासजी भी तो सर्वज्ञ हैं। वे विदेह मुक्त क्यों नहीं हुए?

वशिष्ठजी बोले—हे राम! जैसे सूर्य्य की किरणों द्वारा त्रसरेणु उड़ती दीख पड़ती है तिनकी संख्या कुछ नहीं होती। जैसे परम सूर्य्य के सम्वेदन रूपी किरण में त्रिलोकी रूपी जो त्रसरेणु है, सो असंख्य और अनन्त होकर मिट जाते हैं तथा और अनन्त होते हैं, अनन्त त्रिलोकी ब्रह्म समुद्र में होगी, तिसकी संख्या कुछ नहीं है।

श्रीरामचन्द्रजी बोले—हे भगवान्! जो आगे व्यतीत हो गये हैं और जो आगे होंगे, तिनकी संख्या कितनी है और वर्तमान काल की संख्या तो मैं जानता ही हूँ।

वशिष्ठजी बोले—हे राम ! अनन्त कोटि त्रि-लोकी के गण उपजे हैं और मिट गए हैं और कितने ही होंगे, गिनने की संख्या कुछ नहीं, क्योंकि जीव असंख्य है, और जीव के जीव प्रति अपनी अपनी सृष्टि है, जब यह जीव मृतहो जाते हैं तब उसी स्थान में अपने अन्त वाहक संकल्प रूपी पुर विषे इनका बंध भास आता है और इसी स्थान में परलोक भास आता है। पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश पंचभूत भासते हैं और नाना प्रकार की वासना के अनुसार अपनी सृष्टि भास आती है, फिर जब वहाँ से मृतक होता है तब वही सृष्टि भास आती है। फिर नाग्रस रूप संयुक्त वही जात सत्य होकर भास आती है। फिर जब वहाँ से मरता है, तब इस पंचम भूतसृष्टि का अभाव हो जाता है और अपर भासती है, वहाँ के जो जीव होते हैं तिनको भी इसी प्रकार अनुभव होता है इसी प्रकार एक एक जीवकी सृष्टि होती है और मिट जाती है। जिसकी संख्या कुछ नहीं तब फिर ब्रह्माजी की सृष्टि की संख्या कैसे होवे ?

जैसे पुरुष फेरी लेता है अर्थात् घूमता है और तिसको सर्व पदार्थ घूमते दिखाई देते हैं और जैसे नौका में बैठे हुए नदी तट के वृक्ष चलते दिखाई देते हैं। जैसे नेत्र के दोष से आकाश में मोतीकी माला दृष्टि आती है, जैसे स्वप्न में सृष्टि भासती है, तैसे ही जीव को भ्रम से यह लोक परलोक भासते हैं, वास्तव में जगत कुछ उपजा ही नहीं। एक अद्वैत परम तत्व अपने आप विषे स्थित है तिस विषे द्वैत भ्रम अविद्या से भासता है। जैसे बालक को अपनी परछाई में वैताल भासता है, और भय को पाता है, तैसे ही अज्ञानी को अपनी कल्पना जगत रूप होकर भासती है।

हे राम! यह व्यास देव बत्तीस बार मेरे देखने में आये हैं तिनमें दश तो एक आकार के हैं और एक ही जैसे क्रिया और एक ही जैसे निश्चय हुआ है और अन्य दश समान ही समान हुए हैं। और बड़े विलक्षण आकार तथा बड़े विलक्षण क्रिया

चेष्टा वाले हुए हैं। जैसे समुद्र में तरंग होते हैं, उन में कोई सम और कोई विलक्षण उपजते हैं, तैसे ही व्यास हुए हैं और सम जो दस हुए हैं तिनमें दशम व्यास यही हैं और आगे भी आठ बार यही होंगे फिर यह महाभारत कहेंगे। अनन्तर नवमी बार ब्रह्मा होकर विदेह मुक्त होंगे और हम भी होंगे। तथा वाल्मीकि भी होंगे। भृगु भी होंगे और बृहस्पति के पिता अंगिरा भी होंगे इत्यादि अनेक होंगे।

हे राम! एक सम होते हैं, एक विलक्षण होते हैं और मनुष्य देवता तिर्यगादिक जीव कई बार समान होते हैं, कई बार विलक्षण होते हैं, इतने ही जीव समान आकार आगे जैसे कुल क्रिया सहित होते हैं और कई संकल्प से उड़ते फिरते हैं। आना जाना, जीना, मरना, स्वप्न भ्रम की नाईं दीखता है क्योंकि वास्तव में कोई न आता है, न जाता है न मरता है, यह भ्रम अज्ञान से भासता है। विचार करने से कुछ निकलता नहीं। जैसे कदली का

स्तम्भ देखने में बडा पुष्ट होता है और फिर खोद कर देखो, तो सार कुछ नहीं निकलता, तैसे ही जगत का भ्रम अविचार से सिद्ध है विचार करने से कुछ भाषता नहीं।

हे राम! जो पुरुष आत्म सत्ता में जगा है, तिसको द्वैत भ्रम नहीं भासता वह आत्मदर्शी सदा शांतात्मा परमानन्द स्वरूप है, और सब कल्पना से रहित हैं ऐसे ही जीवन मुक्त को कोई चलायमान नहीं कर सकता। ऐसे जो व्यासदेवजी हैं, उनको सदेह मुक्ति और विदेह मुक्ति की कोई कल्पना नहीं क्योंकि वे सदा अद्वैत रूप हैं। हे राम! जीवनमुक्त का सर्वत्र सर्वात्मा पूर्ण भासता है और स्वरूप है। स्वरूप सार शान्ति रूप अमृत द्वारा पूर्ण है और निर्वाण में स्थित है।

इति श्रीयोगवासिष्ठे मुमुक्षु प्रकरणे कन्हैयालाल मिश्रकृत, भाषाटीकायां असंख्य सृष्टि प्रतिपादन नामतृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

चतुर्थः सर्गः

(अथ पुरुषार्थोपक्रम वर्णनम्)

वशिष्ठजी बोले—हे राम ! जीवनमुक्त और विदेहमुक्त में भेद कुछ नहीं। जैसे स्थिर जल है, तो भी जल है और तरंग फिरते हैं तो भी जल है। तैसे ही जीवनमुक्त और विदेहमुक्त में कुछ भेद नहीं है। हे श्रीरामचन्द्र ! तुमको जीवनमुक्त और विदेहमुक्त का अनुभव प्रत्यक्ष नहीं भासता है, सो जो स्वसंवेद्य हैं और तिनमें जो भेद भासता है, सो असम्यकदर्शी का भासता है। ज्ञानवान को कुछ नहीं भासता। हे श्रीराम ! जैसे वायु स्पंद रूप होता है तो भी वायु है और निस्पंद रूप होता है, तो भी वायु है। उसके निश्चय विषे भेद कुछ नहीं। पर अन्य जीव को स्पंद होती है, तो भासती है और निस्पंद होती है तो नहीं भासती तैसे ही ज्ञानवान पुरुषों को जीवनमुक्त और विदेहमुक्त में भेद कुछ

नहीं। वह सदा द्वैतकल्पना से रहित है। जब जीव को उसका शरीर भासता है तब उसको जीवन-मुक्त कहते हैं। जब शरीर अदृश्य होता है तब उसे विदेहमुक्त कहते हैं। और उसको दोनों ही समान हैं।

हे राम! अब प्रकृत प्रसंग को सुनिये जो श्रवण का भूषण है। जो कुछ सिद्ध होता है; सो अपने पुरुषार्थ से ही सिद्ध होता है पुरुषार्थ बिना सिद्धि कुछ नहीं होती और जो कहते हैं कि दैव करे-गा सो होगा, यह मूर्खता है। यह जो चन्द्रमा हृदय को शीतल तथा उल्लास भासता है, सो इसमें शीत-लता पुरुषार्थ से ही हुई है। हे राम! जिस अर्थ की प्रार्थना और यत्न करै और तिसमें फिर नहीं तो अविस्मय कर अवश्य पाता है। अब पुरुष प्रयत्न किसका नाम है सो सुनिये। संतजन और सत् शास्त्र के उपदेश रूपी उपाय के अनुसार चित्त के विचारने का नाम ही पुरुषार्थ यत्न है, उससे जो दूसरी चेष्टा करता है उसका नाम उन्मत्त चेष्टा है

और जिस निमित्त चेष्टा करता है सो ही पाता है। एक जीव था, सो उसने पुरुषार्थ प्रयत्न करके इन्द्र की पदवी पाई और वह त्रिलोकी का पति होकर सिंहासन पर विराजमान हुआ।

हे रामचन्द्र! आत्मतत्व में जो चैतन्य अस्पंद स्पंद रूप होकर स्फुरता है, सो अपने पुरुषार्थ द्वारा ब्रह्मा के पद को प्राप्त हुआ है। अतएव जिसको कुछ सिद्धता प्राप्त हुई, सो अपने पुरुषार्थ से ही हुई है। केवल चैतन्य जो आत्मतत्त्व है, तिसमें चित्त संवेदन स्पंद रूप है यह चैतन्य संवेदन अपने पुरु-षार्थ द्वारा गरुड़ पर आरूढ़ होकर विष्णु रूप होता है और पुरुषोत्तम कहता है, और यह चैतन्य संवे-दन अपने पुरुषार्थ करके रूद्र रूप हुआ है, तथा अपने अर्धांगमें पार्वती को स्थित किया है और मस्तक में चन्द्रमा को धारण किया है और नीलकण्ठ परम शान्ति रूप है। इसलिये जो कुछ सिद्ध होता है सो पुरुषार्थसे ही होता है।

हे रामचन्द्र ! पुरुषार्थ करके यदि सुमेरु को चूर्ण किया चाहे, तो भी कर सकता है। जैसे पूर्व दिन में पाप किया हो और अगले दिन पुण्य करे तब सब पाप दूर हो जाता है। जो अपने हाथ द्वारा चरणामृत नहीं ले सकता, वह भी यदि पुरुषार्थ करे, तो इस पृथ्वी को खण्ड-खण्ड कर सकता है, इसमें सन्देह नहीं।

इति श्री योगवाशिष्ठे मुमुक्षु प्रकरणे कन्हैयालाल
मिश्र कृत भाषाटीकायां पुरुषार्थोपक्रमो
नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

पंचमः सर्गः

अथ पुरुषार्थ वर्णनम्

वाशिष्ठजी बोले—हे राम ! जो अपने चित्त में कामना करता है, किन्तु शास्त्र के अनुसार पुरुषार्थ कुछ भी नहीं करता, उसको सुख नहीं मिलेगा। क्योंकि उसकी उन्मत्त चेष्टा है। फिर पुरुषार्थ भी दो

प्रकार का है अर्थात् एक शास्त्रानुसार दूसरा शास्त्र के विरुद्ध, जो शास्त्र को त्याग कर अपनी इच्छा के अनुसार विचरता है सो सिद्धता को नहीं पावेगा। और जो शास्त्र के अनुसार पुरुषार्थ करता है वह सिद्धता को प्राप्त होगा और उसको दुःख भी न होगा। जो अनुभव से स्मरण होता है, औ स्मरण से अनुभव होता है सो दोनों इस ही से होते हैं, दैव तो कुछ भी नहीं है। हे राम ! अन्य दैव कोई नहीं, इसका किया इसको मिलता है परन्तु जो बलिष्ठ होता है सो तिसके अनुसार विचरता है जो पूर्व के संस्कार बली हुए तो उसका जय होता है और जो विद्यामान पुरुषार्थ बली होते हैं, तब उसको जीत लेते हैं, मान लो कि एक पुरुषार्थ के दो घंटे हैं और वह उनको लड़ाता है, तो दोनों में जो बली है उसी की जीत होती है परन्तु दोनों उसके ही इसी प्रकार दोनों कर्म इसके हैं, जो पूर्व का संस्कार बली होता है तब ही इसकी विजय होती है।

हे राम ! यह जो सत्सङ्ग करता है और सच्छास्त्र को भी विचारता है, फिर पक्षी की नाईं संसार वृक्ष की ओर भी उड़ता है तो पूर्व का संस्कार बली है, तिसके कारण स्थिर नहीं हो सकता, ऐसा समझ कर तुम पुरुष प्रयत्न का त्याग मत करना। पूर्व के संस्कार से अन्यथा नहीं होता। चाहे पूर्व का संस्कार बली भी होवे, किन्तु जब सत्संग कर और सच्छास्त्र का भी दृढ़ अभ्यास होवै तो पूर्व के संस्कार को पुरुष प्रयत्न के द्वारा जीत लेता है। जैसे पूर्व के संस्कार में पाप किया है और आगे पुण्य किया है सो जब अगले का अभाव हो जाता हैं तब वह पुरुष प्रयत्न होता है। सो वह पुरुषार्थक्य है और इनके द्वारा सिद्ध क्यों होता है सो सुनिये। ज्ञानवान् जो सन्त हैं और सच्छास्त्र जो ब्रह्मविद्या है तिसके अनुसार प्र-यत्न करने का नाम ही पुरुषार्थ करके प्राप्त करने योग आत्मा है तिसके द्वारा संसार समुद्र से पार होवे।

हे राम ! जो कुछ सिद्ध होता है सो अपने पुरु-

षार्थ से ही होता है। अन्य देव कोई नहीं। और जो शास्त्र के अनुसार पुरुषार्थ को त्याग कर कहता है कि सब कुछ करने वाला दैव ही है, वह गधा है और उसका सङ्ग कभी नहीं करना चाहिये। क्योंकि उसकी संगति करना दुःख का कारण है। इस पुरुष का प्रथम तो यह कर्त्तव्य है कि अपने वर्णाश्रम विषे शुभ आचार को ग्रहण करै और अशुभ का त्याग करै फिर सन्त का सङ्ग और सच्छास्त्र को भी विचारना और तिसको विचार कर फिर अपने गुण दोष का भी विचार करना अर्थात् मैं दिन और रात में शुभ क्या करता हूँ और अशुभ क्या करता हूँ? आगे गुण और दोष का भी साक्षी भूत होकर जो सन्तोष धैर्य वैराग्य विचार अभ्यास गुण हैं, उनको बढ़ाना और विपरीत दोष को त्याग करना। जब तुम ऐसे पुरुषार्थ को अंगीकार करोगे तब परमानन्द रूप आत्म तत्व को प्राप्त होगे।

इसलिये हे रामजी! वन के घायल हुए मृगकी

नाईं नहीं होना, जो घासतृण पातको रसीला जानकर खड़ा हुआ चुगता है। जैसे स्त्री पुत्र बांधव धनादिक विषे मस्त होकर रहना नहीं होता। इनसे विरक्त होना दन्त के साथ दन्त को चबाकर समुद्र से पार होने का यत्न करना और बल से बंधन को तोड़ कर निकल जाना जैसे केसरी सिंह बल करके पिंजरे में से निकल जाता, वैसे ही निकल जाना यही पुरुषार्थ है।

हे राम ! जिसको कुछ सिद्धता की प्राप्ति हुई है, सो अपने पुरुषार्थ से ही हुई है । पुरुषार्थ के बिना नहीं होती। जैसे प्रकाश के बिना पदार्थ का ज्ञान नहीं होता । जिस पुरुष ने अपना पुरुषार्थ त्याग दिया है, और दैव के आश्रय हुए हैं कि हमारा दैव कल्याण करेगा सो न होगा। जैसे कोई पत्थर से तेल निकालना चाहे सो नहीं निकल सकता। वैसे ही उसका कल्याण दैव से न होगा, हे राम ! तुम तो दैव का आश्रय त्याग कर अपनें पुरुषार्थ का आश्रय करो। क्योंकि जिसने अपना पुरुषार्थ छोड़

दिया है उसको सुन्दर कीर्ति लक्ष्मी त्याग जाती है जैसे बसन्त ऋतु की मंजरी बसन्त ऋतु के जाने से विरस हो जाती है तैसे ही उनकी कांति लघु हो जाती है। जिस पुरुष ने ऐसा निश्चय किया है कि हमारा पालनेहारा दैव है वह पुरुष ऐसा है जैसे कोई अपनी भुजा को सर्प जान भय पाय कर दौड़ता है और यह नहीं जानता कि अपनी भुजा है, तैसे ही अपने पुरुषार्थ को त्याग कर पुरुष दैव का आश्रय कर भय को पाता है।

पुरुषार्थ नाम इसका है कि सन्त का सङ्ग और सच्छास्त्रों का बिचार करके तिनके अनुसार विचरना और जो इनको त्याग कर अपनी इच्छा के अनुसार विचरते हैं सो सुख और सिद्धता को नहीं पावेंगे और जो शास्त्रके अनुसार विचरते हैं सो यहाँ भी सुख पावेंगे और आगे भी सुख पावेंगे ऐसे ही सिद्धता को पावेंगे इसलिये संसार रूपी जाल विषे में मत गिरना इसका नाम पुरुषार्थ है। सन्त जनों के संग

और सच्छास्त्र के अर्थ हृदयरूपी पत्र में लिखना बोध रूपी कमल करनी तथा विचार रूपी स्याही करनी, बस जब ऐसे पुरुषार्थ से लिखेगा तब पुरुष संसार रूपी जाल में नहीं गिरेगा।

हे राम ! जैसे यह आदि नेत हुई है। जो पट है सो पट है, जो घट है सो घट ही है वह पट नहीं और पट है सो घट नहीं, तैसे ही यह भी नेत हुई है। अपने पुरुषार्थ के बिना परमपद की प्राप्ति नहीं होती।

हे राम ! जो सन्त की संगति भी करता है और सच्छास्त्र भी विचारता है तथा उनके अर्थ भी नहीं करता। तिसके द्वारा सिद्धता प्राप्त नहीं होती। जैसे अमृत के निकट ही बैठा होवे किन्तु पान किये बिना अमर नहीं होता तैसेही अभ्यास किये बिना मनुष्य अमर नहीं होता और सिद्धता प्राप्त नहीं होती।

हे राम ! अज्ञानी जीव अपना जन्म व्यर्थ खोते हैं क्योंकि जब बालक होते हैं तब मूढ़ अवस्था में लीन रहते हैं और युवावस्था में विकारको भी सेवते

हैं तथा जरामें जर्जरी भूत होते हैं। इसी प्रकार जीना व्यर्थ है और जो अपना पुरुषार्थ त्याग कर दैव का आश्रय लेता है सो अपने हन्ता होते हैं। वह सुख को नहीं पावेंगे। हे राम! जो पुरुष व्यव-हार और परमार्थ में आलसी होते हैं और परमार्थ को त्याग कर मूढ़ होते हैं सो दीन मानो पशु और दुःख को प्राप्त होते हैं। यह मैंने विचार कर देख लिया है। बस इससे पुरुषार्थ का आश्रय कीजिये सत्संग और सच्छास्त्र रूपी आश्रय के द्वारा अपने गुण करके दोष को देख दोष का त्याग करो। और शास्त्र के सिद्धान्त का अभ्यास करो क्योंकि जब दृढ़ अभ्यास करोगे, तब फिर शीघ्रही आनन्दको प्राप्त होगे। बाल्मीकि जी बोले—जब इस प्रकार वशिष्ठजी ने कहा, तब उसी समय सायंकाल हो गया। तब सब सभा स्नान के लिये उठ खड़ी हुई और सब कोई

परस्पर नमस्कार करके अपने नगर को चले गये। अनन्तर सूर्योदय होते ही फिर सभा जुड़ी।

इति श्री योगवाशिष्ठे मुमुक्षु प्रकरणे मुरादाबाद निवासी कन्हैयालाल मिश्र कृत भाषाटीकायां पुरुषार्थ वर्णनं नाम पंचमः सर्गः ॥ ५ ॥

षष्ठः सर्गः

अथ परम पुरुषार्थ वर्णनम्

वशिष्ठजी बोले—हे श्रीरामचन्द्रजी! इसका पूर्व का किया जो पुरुषार्थ है, उसीका नाम दैव है—दूसरा दैव कोई भी नहीं। जब यह सत्संग और सच्छास्त्र को विचार कर पुरुषार्थ करे तब पूर्व के संस्कार को जीत लेता है, जो पुरुष इष्ट प्राप्त करने का शास्त्र के द्वारा यत्न करेगा, सो अवश्यमेव अपने पुरुषार्थ से फल को पावेगा। अन्यथा कुछ नहीं होता, न हुआ है, न होगा। पूर्व में जो कुछ पाप किया होता है उसका फल जब दुःख पाता है तब मूर्ख कहता

है कि हा दैव ! हा दैव !! हा कष्ट ! हा कष्ट !!

हे राम ! इसको जो पहला पुरुषार्थ है। उस का नाम दैव है । अन्य दैव कोई नहीं और जो किसी की कल्पना करते हैं सो मूर्ख हैं और जो पूर्व के जन्म में सुकृत करके आया होता है, वही सुकृत सुख होकर दिखाई देता है । जो पूर्व का सुकृत बली होता है, तो उसही की जय होती है। जो पूर्व का दुष्कृत बली होता और शुभ का पुरुषार्थ करता है, सत्सङ्ग और सच्छास्त्र का भी विचार सुनता है, तो वह पूर्व संस्कार को जीत लेता है जैसे प्रथम दिन पाप किया होवे, तो दूसरे दिन बड़ा पुण्य करने से पूर्व का पाप निवृत्त हो जाता है। तैसे ही जब यहाँ दृढ़ पुरुषार्थ करे, तो पूर्व के संस्कार को जीत लेता है अतएव जो कुछ सिद्ध होता है, सो इसको पुरुषार्थ से ही सिद्ध होता है। एकत्र भाव से यत्न करने का नाम ही पुरु-षार्थ है। जो जिसका ध्यान एकत्र भाव होकर करेगा, सो वह उसको अवश्यमेव

प्राप्त होगा । जो पुरुष अन्य देवको जान कर अपना पुरुषार्थ त्याग बैठा है, सो दुःख को पावेगा। उसको शान्ति कभी नहीं मिलेगी ।

हे राम ! मिथ्या दैव के अर्थ को त्याग कर तुम अपने पुरुपार्थ को अंगीकार करो । जो सन्त जन और सच्छास्त्र के वचन तथा युक्ति के साथ यत्न करके आत्म पद को अभ्यास करके प्राप्त करता है । सो इसी का नाम पुरुषार्थ है और इसी से आ-त्म पद की प्राप्ति होती है । जो पूर्व के किये दुष्कृत से बड़ा पापी होता है, सो यहाँ दृढ़ पुरुषार्थ करने से उसको जीत लेता है, जैसे बड़ा मेघ होता है, उस-को पवन नाश करता है और जैसे वर्षा क्षेम पक्का होता है और बरफ तिसका नाश कर देता है । वैसे ही पूर्व का संस्कार पुरुष प्रयत्न करके नाश कर देता है।

हे राम ! श्रेष्ठ पुरुष वही है जिसने सत्सङ्ग और सच्छास्त्र के द्वारा बुद्धि तीक्ष्ण करने तथा संसार समुद्र तैरने का पुरुषार्थ किया है और जिन्होंने सत्संग

और सच्छास्त्र द्वारा बुद्धि तीक्ष्ण नहीं करी, तथा पुरुषार्थ को त्याग बैठे हैं, वे पुरुष नीच से नीच गति को पावेंगे और जो श्रेष्ठ पुरुष हैं, सो अपने पुरुषार्थ करके परमानन्द पद को पावेंगे । जिसके पाये से फिर दुःखी नहीं होंगे और जो देखने से दीन होते हैं, तथा सत्संगति और सच्छास्त्र के अनुसार पुरुषार्थ करते हैं, सो उत्तम पदवी को प्राप्त होते दिखाई देते हैं।

हे राम ! जिस पुरुष ने प्रयत्न किया है उसको सब सम्पदा प्राप्त होती है और वह परमानन्द से पूर्ण हो जाता है। जैसे रत्न से समुद्र पूर्ण होते हैं अतएव जो श्रेष्ठ पुरुष हैं सो अपने पुरुषार्थ द्वारा संसार के बन्धन से निकल जाते हैं। जैसे केशरी सिंह अपने बल द्वारा पिंजरे से निकल जाता है, तैसे ही वह भी अपने पुरुषार्थ द्वारा संसार बन्धन से निकल जाता है।

हे राम ! यह पुरुष और कुछ न कर सके, तो यह करे कि अपने वर्णाश्रम के अनुसार और सारा

पुरुषार्थ करे। जो सन्त तथा सारे शास्त्र का आश्रय होवे तिसके अनुसार पुरुषार्थ करे। तब सब बन्धन से मुक्त होगा, और जिस पुरुष ने अपने पुरुषार्थ को त्याग दिया है, और अन्य दैव को मान कर कहता है कि यह मेरा कल्याण करेगा, वह जन्म मरण को प्राप्त होगा और शान्तिवान् भी न होगा।

हे राम! इस जीव को संसार रूपी विशूचिका रोग है। उसको दूर करने का उपाय मैं कहता हूँ। यथा सन्तजन और सच्छास्त्र के अर्थविषय दृढ़ भावना रखनी अर्थात् जो कुछ उनमें सुना है तिसका बारम्बार अभ्यास करना दूसरी सब कल्पना त्याग एकांत होकर उसका चिंतवन करना ऐसा करने से तब इसको परमपद की प्राप्ति होगी और द्वैत भ्रम निवृत्त हो जावेगा अद्वैत रूप भासैगा, बस इसका नाम पुरुषार्थ है।

इति श्री योगवाशिष्ठे मुमुक्षु प्रकरणे मुरादाबाद निवासी कन्हैयालाल मिश्रकृत भाषाटीकायां परम पुरुषार्थ वर्णनं नाम षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

सप्तमः सर्गः

अथ पुरुषार्थोपमा वर्णनम्

वाशिष्ठ जी बोले—हे राम ! पुरुषार्थ के द्वारा इसको आध्यात्मिक आदि ताप आकर प्राप्त होते हैं तिन से शान्ति को नहीं पाता। तुम भी रोगी मत होना, अपने पुरुषार्थ द्वारा जन्म मरण के वंधन से मुक्त होना। दूसरा कोई कैद मुक्त नहीं करेगा केवल अपने पुरुषार्थ द्वारा ही संसार के बंधन से मुक्त होना है। जिस पुरुषने अपने पुरुषार्थ का त्याग किया है और किसी अन्य दैवको मानकर तिसपर परायण हुआ है, उसका धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष नष्ट हो जावेगा और वह नीच मति को प्राप्त होगा।

हे राम ! शुद्ध चैतन्य जो इसका अपना आपा है और वास्तविक रूप है तिसका आश्रय कर जो क्रिआदि चित्संवेदनस्फूर्त्ति अहमत्व सम्वेदन होकर फूटने लगती है। फिर इन्द्रिहय अहं स्फूर्त्ति हैं जब यह स्फूर्ना सन्त और शास्त्रके अनुसार होवे,

तब वह पुरुष परम शुद्धता को प्राप्त होता है, किन्तु यदि सच्छास्त्र के अनुसार नहीं होवे, तब वासना के अनुसार भाव अभाव रूप जो भ्रम जाल है, तिस विषय में पड़ा घटी यन्त्र की नाईं भटकता है और शान्तिवान् कभी नहीं होता।

हे राम! जिस किसी को सिद्धता प्राप्त हुई है, सो वह अपने पुरुषार्थ से ही हुई है। बिना पुरुषार्थ के सिद्धता को प्राप्त नहीं होता। जब किसी पदार्थ को ग्रहण करना होता है, तब भुजा पसारने से ग्रहण किया जाता है क्योंकि जो किसी देश को प्राप्त करना हो तब जब चलिये, तब ही वहाँ पहुँचा जाता है अन्यथा नहीं। बस पुरुषार्थ के बिना कुछ नहीं होता। जो कोई कहता है कि दैव करेगा सो होगा। वह मूर्ख है। हे राम! अन्य दैव कोई नहीं इस पुरुपार्थ का नाम ही दैव है। इस दैव शब्द को मूर्ख भी जानता है। जब किसी पर महान् दुःख आपड़ा, तो झट कह उठता है कि यह दुःख दैव ने दिया है।

हे रामचन्द्र ! जो अपना पुरुषार्थ छोड़कर दैव के आश्रय हो रहेगा, तो वह सिद्धता को प्राप्त न होगा। क्योंकि अपने पुरुषार्थ के बिना सिद्धि किसी को प्राप्त नहीं होती। देखो बृहस्पतिजी ने जब दृढ़ पुरुषार्थ किया है, तब ही राजा इन्द्र के गुरु हुए हैं और शुक्राचार्य्य भी अपने परमार्थ द्वाराही सब दैत्यों के गुरु बने हैं। और भी जो सामान्य जीव हैं तिन विषे जिस पुरुष ने प्रयत्न किया है, वही उत्तम हुआ है जिसकी जाति सिद्धि प्राप्त हुई है, सो अपने पुरुषार्थ से ही हुई है और जिस पुरुष ने संत तथा शास्त्र के अनुसार पुरुषार्थ नहीं किया, सो मेरे देखते २ राजा और प्रजा, धन और विभूति से क्षीण हो गये हैं। नरक में पडे भी जलते हैं जिसके द्वारा अर्थ सिद्धि होवे, उसका ही नाम पुरुषार्थ है और जिसके द्वारा अनर्थ की प्राप्ति होवे उसका नाम अपुरुषार्थ है।

हे राम ! इस पुरुष का कर्त्तव्य यही है कि

सच्छास्त्र और सङ्ग करके बुद्धि तीक्ष्ण करे तथा शुभ गुणों को पुष्ट करे, दया–धैर्य्य–सन्तोष वैराग्य का अभ्यास करके बुद्धि को तीक्ष्ण करे और जैसे बड़े ताल से मेघ पुष्ट होता है, और वर्षा करके मेघ ताल को पुष्ट करता है, तैसे ही शुभ गुण करके बुद्धि पुष्ट होती है और पुष्ट बुद्धि के द्वारा शुभ गुण पुष्ट होते हैं।

हे राम ! जो बाल अवस्था से अभ्यास किया होता है, उसको शुद्धता प्राप्त होती है। अर्थात् दृढ़ अभ्यास के बिना शुद्धता प्राप्त नहीं होती हैं। जो किसी देश अथवा तीर्थ को जाना होवे, तब मार्ग में निरालस होकर चला जावे, तो वहाँ पहुँचेगा और जब भोजन करेगा, तब क्षुधा निवृत्ति होगी अन्यथा नहीं। जब मुखमें जिह्वा शुद्ध होगी, तब सब पाठ स्पष्ट होगा ! गूँगे पुरुष से पाठ नहीं होता। अत-एव जो-कुछ काम सिद्ध होता है, सो अपने पुरुषार्थ से ही सिद्ध होता है। चुप हो रहने से कोई कार्य्य

सिद्ध नहीं होता। यह सब ही गुरु बैठे हैं, इन से भी पूछ देखो। आगे जो तुमारी इच्छा हो सो करो और जो मुझसे पूछो, तब मैं शास्त्र सिद्धान्त कहता हूँ, जिसके द्वारा तुम सिद्धता को प्राप्त होगे।

हे राम! संत ज्ञानवान् पुरुष हैं और सच्छास्त्र ब्रह्म विद्या है तिनके अनुसार संवेदन तथा मन और इन्द्रिय हुआ विचारना होवे और इससे विरुद्ध होवे, तिससे रहित रखना। तिसके द्वारा संसार का राग द्वेष तुमको स्पर्श नहीं करेगा, सब से निर्लेप रहोगे।

हे राम! जिस पुरुष से भी शांति प्राप्त होवे, तिसकी भली प्रकार सेवा करो। क्योंकि यह उन का बड़ा उपकार है। वे संसार समुद्र से निकाल लेते हैं। हे राम! सन्त जन भी वही हैं और सच्छास्त्र भी वही है जिसके विचार और संगति द्वारा संसार से चित्त उपशम होवे, मोक्ष का उपाय भी वही है। इस लिये अन्य सब कल्पनाओं को त्याग कर अपने पुरुषार्थ को अंगीकार करो। तब जन्म

मरण का भय दूर हो जायगा। हे राम ! जो यह वांछा करता है और उसके निमित्त दृढ़ पुरुषार्थ करता है तब अवश्यमेव उसको पा लेता है और जो बड़े तेज तथा विभूति से संपन्न तुमको दिखाई देते हैं सो अपने पुरुषार्थ द्वारा ही हुए हैं और जो महा निष्ठ सर्प, कीट आदिक तुमको दीखते हैं उन्होंने अपने पुरुषार्थ को त्याग दिया है। तब ही ऐसे हुए हैं।

हे राम ! अब तुम अपने पुरुषार्थ का आश्रय करो, नहीं तो सर्प कीटादिक नीच योनिको प्राप्त होगे क्योंकि जिन पुरुषों ने अपना पुरुषार्थ छोड़ दिया है और किसी दैव का आश्रय किया है सो वे महा मूर्ख हैं। क्योंकि यह वार्ता व्यवहार में भी प्रसिद्ध है कि, अपने उद्यम के किये विना किसी पदार्थ की प्राप्ति नहीं होती। तब फिर परमार्थ की प्राप्ति कैसे हो सकती है ? इससे दैव को त्याग कर सन्तजन और सच्छास्त्रों के अनुसार तुम यत्न

करो। जो परमपद पाने के निमित्त दुःख से मुक्त होवे। हे राम ! जनार्दन विष्णु भगवान् अवतार धारण करके दैत्यों को भी मारते हैं और अन्य चेष्टा भी करते हैं, परन्तु आपका स्पर्श इनका नहीं होता, क्योंकि सब अपने पुरुषार्थ द्वारा अभय पद को प्राप्त हुए हैं अतएव तुम भी पुरुषार्थ का आश्रय करके संसार रस समुद्र से पार हो जाओ।

इति श्री योगवाशिष्ठे वैराग्य प्रकरणे मुरादाबाद निवासी कन्हैयालाल मिश्र कृत भाषा टीकायां पुरुषार्थोपमा वर्णनं नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

अष्टमः सर्गः

अथ परम पुरुषार्थ वर्णनम्

वशिष्ठजी बोले—हे श्रीरामचन्द्र ! यह दैव शब्द किसी मूर्ख ने कल्पित किया है कि, दैव हमारी रक्षा करेगा। किन्तु हमको तो उस दैव का आकार कुछ दिखाई नहीं देता। दैव का कोई

काल है और न दैव कुछ करता ही है, मूर्ख लोग पड़े हुए। दैव! दैव! कहा करते हैं।

कायर मन कर एक अधारा। दैव दैव आलसी पुकारा॥

सो दूसरा दैव कोई नहीं है——इसके पूर्व कृत कर्म को ही दैव नाम से पुकारा जाता है।

हे राम! जिस पुरुष ने अपना पुरुषार्थ छोड़ दिया है और केवल दैव के ही भरोसे बैठा है, कि दैव हमारा कल्याण कर देगा उसको महा मूर्ख समझना चाहिये। यदि कोई अग्नि में जा पड़े और वहाँ से उसको दैव बचा लेवे, तब जानें कि निःसन्देह दैव कोई पदार्थ है किन्तु ऐसा नहीं है और जो दैव ही करता है तो फिर यह स्नान दान भोजन आदि को भी छोड़ कर चुप हो बैठे। दैव आप ही सब कर जायगा। किन्तु सो भी बिना इसके किये कुछ नहीं होता। इसलिये अन्य दैव कोई भी नहीं केवल अपना किया जो पुरुषार्थ है,

उसी को दैव नाम से पुकारा जाता है। अपना पुरुषार्थ ही कल्याण करने वाला है।

हे राम! यदि इस मनुष्य का किया कुछ नहीं होता और सारे कामों का करने वाला दैव ही है, तो फिर गुरु तथा शास्त्र के उपदेशकी भी क्या आवश्यकता रह गई? सत् शास्त्रों के उपदेश और अपने पुरुषार्थ से इसको अभिलषित सिद्धि मिलती है। इस लिये दैव शब्द ही व्यर्थ है। इसका भ्रम छोड़ सन्त और शास्त्रों के अनुसार पुरुषार्थ करने पर ही मनुष्य मोक्ष पा सकेगा।

हे राम! यदि कोई दूसरा दैव करने वाला होता, तो जब इस देह को मनुष्य छोड़ता है तब सब कुछ नाश हो जाता है। शरीर के द्वारा एक भी कार्य नहीं होता, क्योंकि चेष्टा करने वाला तो देह से पृथक ही हो जाता है। यदि दैव कोई होता, तो सारे शरीर से चेष्टा करता। किन्तु वैसी चेष्टा कुछ नहीं होती, इस लिये दैव शब्दही व्यर्थ है। हे राम! पुरुषार्थ की वार्ता अज्ञानी जीव को भी

प्रत्यक्ष है अर्थात् अपने पुरुषार्थ के बिना कुछ नहीं होता । गोपालक अर्थात् ग्वाला भी जानता है कि यदि मैं गैया नहीं चराऊँगा, तो वे भूखी ही रहेंगी, इस लिये अन्य दैव के आश्रय नहीं बैठा रहना चाहिये ।

हे राम ! अन्य दैव की कल्पना भ्रम मात्र है । क्योंकि दूसरा दैव तो कोई दीखता ही नहीं । न दैव का कोई हाथ पैर और शरीर ही दिखाई देता है । और अपने पुरुषार्थ से ही सिद्धि मिलती है । यदि किसी आकार के साथ दैव की कल्पना की जाय, तो भी नहीं बनता, क्योंकि निराकार और साकार का मेल हो कैसे सकता है ?

हे राम ! केवल अपना पुरुषार्थ ही दैव है अन्य कोई नहीं । राजा भी अपने पुरुषार्थ द्वारा ही ऋद्धि सिद्धि से युक्त होता है ।

हे राम ! इन विश्वामित्र जी ने दैव शब्द को दूर ही से त्याग दिया है और वे भी अपने पुरुषार्थ द्वारा ही क्षत्रिय से ब्राह्मण हुए हैं । इसके अतिरिक्त

और जो विभूति सम्पन्न हुए हैं—वह भी अपने पुरुषार्थ से ही हुए हैं। हे राम ! यदि दैव बिना विद्या पढ़े हुए पण्डित बना देवे—तो समझो कि दैव ने किया—किन्तु बिना पढ़े कभी पण्डित नहीं हो सकता और जो अज्ञानी से ज्ञानवान् होते हैं, सो वह भी अपने पुरुषार्थ से ही होते हैं, इस लिये अन्य दैव कोई नहीं मिथ्या भ्रम को त्यागकर सन्त जन और सच्छास्त्र के अनुसार संसार समुद्र से तैरने का प्रयत्न करो पुरुषार्थ के सिवाय अन्य दैव कोई नहीं, जो अन्य दैव होता, तो बहुत बार क्रिया वल भी अपनी क्रिया को त्याग कर सोई रहता, स्वयं दैव ही पड़ा हुआ करेगा, सो ऐसे तो कोई नहीं करता, अतएव अपने पुरुषार्थ के बिना कुछ सिद्ध नहीं होता, और जो इसका किया कुछ न होता, तो पाप करने वाले नरक में न जाते, तथा पुण्य करने हारे स्वर्ग में न जाते, किन्तु पाप करने हारे नाक में जाते हैं और पुण्य करने वाले स्वर्ग में जाते हैं अस्तु जो कुछ

प्राप्त होता है, सो अपने पुरुषार्थ से ही होता है।

हे राम ! जो कोई अन्य दैव करता है, ऐसा कहे तो उसका शिर काट लेना चाहिये क्योंकि यदि दैव के सहारे जीवित रहे तो हम समझें कि हाँ कोई दैव अवश्य है। किन्तु कोई भी जीवित नहीं रह सकता, दैव शब्द को केवल मिथ्या भ्रम समझ कर त्याग दो और सन्त तथा सच्छास्त्रों के अनुसार अपना पुरुषार्थ करके आत्मपद में स्थित होओ।

इति श्रीयोगवाशिष्टे मुमुक्षु प्रकरणे मुरादाबाद निवासी कन्हैयालाल मिश्र कृत भाषाटीकायां परम पुरुषार्थ वर्णनं नामाष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

नवमः सर्गः

अथ परम पुरुषार्थ वर्णनम्

श्रीरामचन्द्र जी बोले—हे भगवन् ! हे सर्व-धर्म के वेत्ता ! आप कहते हैं कि और दैव कोई नहीं, परन्तु सुना हैं कि ब्राह्मण दैव हैं, और दैव का किया हुआ सब कुछ होता है, और दैव ही सुख दुःख का देनेहारा है, यह लोक प्रसिद्ध है।

वशिष्ठ जी बोले—हे राम ! मैं तुमसे इस प्रकार कहता हूँ, कि जिससे तुम्हारा भ्रम निवृत्त हो जावे, इसही का कर्म किया हुआ है, वह चाहे शुभ हो अथवा अशुभ उसको अवश्य भोगना है सो दैव कहो, पुरुषार्थ कहो अन्य दैव कोई नहीं, और कर्त्ता, क्रिया, कर्म आदि में भी दैव कोई नहीं, अन्य किसी दैव का स्थान नहीं, रूप नहीं सो फिर अन्य दैव क्या कहें ? हे राम ! मूर्ख को बहकाने के लिये ही दैव शब्द कहा है, क्योंकि जैसे आकाश शून्य है, तैसे ही दैव भी शून्य है।

श्रीरामचन्द्र जी बोले—हे भगवन् ! सर्वधर्म के वेत्ता आप कहते हैं कि दूसरा दैव कोई नहीं, वह तो आकाश की नाईं शून्य है, सो आपके कहने से भी दैव सिद्ध होता है, आप कहते हो कि इसके पुरुपार्थ का नाम ही दैव है, और जगत् में भी दैव शब्द प्रसिद्ध है।

वशिष्ठ जी बोले—हे राम ! मैं तुमको इस प्रकार समझाये देता हूँ कि जिसके द्वारा दैव शब्द तुम्हारे हृदय से उठ जावे, अर्थात् दैव नाम अपने पुरुपार्थ का है और पुरुषार्थ नाम कर्म का है, तथा कर्म नाम वासना का है, वासना मन से होती है और मनरूपी पुरुष है, जिसकी बासना करता है वही इसको प्राप्त होता है, जो गाँव के प्राप्त होने की वासना करता है, सो गाँवों को प्राप्त होता है, जो पत्तों की वासना करता है, सो पत्तों को प्राप्त होता है, इस से अन्य दैव कोई नहीं, पूर्व का जो शुभ अथवा अशुभ दृढ़ पुरुषार्थ किया है उसका परिणाम सुख,

दुःख अवश्य होता है और उसका ही नाम दैव है।

हे राम ! तुम बिचार कर देखो कि अपना पुरुषार्थ कर्म से भी भिन्न नहीं। जो सुख, दुःख देने-हारा और लेनेहारा दैव कोई नहीं हुआ क्योंकि यह जो पाप की बासना करता है और शास्त्र विरुद्ध कर्म करता है, सो किसके द्वारा करता है, पूर्व का जो इसका दृढ़ पुरुषार्थ कर्म है, तिसके द्वारा यह पाप करता है, और जो पूर्व का पुण्य कर्म किया होता है, तो यह शुभ मार्ग में बिचरता है।

श्रीरामचन्द्रजी ने कहा—हे भगवान् ! जो पूर्व की दृढ बासना के अनुसार यह बिचारता है, तो मैं क्या करूँ ! मुझको तो पूर्व की बासाना ने दीन बना दिया है, अतएव अब मुझको क्या करना चाहिये ?

बशिष्ठजी बोले—हे राम ! जो कुछ इसकी पूर्व की बासना दृढ़ हो रही है, उसीके अनुसार यह विचरता है, और जो श्रेष्ठ मनुष्य हैं, वे अपने पुरुषार्थ के द्वारा पूर्व के पालने संस्कार को शुद्ध

करते हैं, तिस के द्वारा—मल दूर हो जाते हैं सच्छास्त्र तथा ज्ञानवान् के वचन अनुसार जब तुम दृढ़ पुरुषार्थ करोगे, तब मलिन वासना दूर हो जावेगी।

✓ हे राम ! पूर्व के मलिन पाप कैसे जाने जायें और शुभ कैसे जाने जायें, सो श्रवण करो। जो चित्त विषय की ओर दौड़े और शास्त्र विरुद्ध मार्गकी ओर जावे, तथा शुभ की ओर न जावे, तो जान लो कि पूर्व का कर्म कोइ मलीन है, और जो संत जन तथा सच्छास्त्र के अनुसार चेष्टा करे और संसार मार्ग से विरक्त होवे, तब जानो कि पूर्व कि कर्म शुद्ध है, अतः हे राम ! तुमको दोनों के द्वारा सिद्धि है, क्योंकि पूर्व का संस्कार शुद्ध है, अर्थात् तुम्हारा चित्त शीघ्र ही सतसग तथा सच्छास्त्र के वचन को ग्रहण कर लेगा और शीघ्र ही तुमको आत्मपद की प्राप्ति होगी और जो तुम्हारा चित्त इस शुभ मार्ग में स्थिर नहिं हो सकता, तो दृढ़ पुरुषार्थ द्वारा संसार समुद्र से पार हो जाओगे।

हे राम ! तुम चैतन्य हो, जड़ नहीं। अपने पुरुषार्थ का आश्रय करो, मेरा भी यही आशीर्वाद है, कि तुम्हारा चित्त शीघ्र ही शुभ आचरण में स्थिर हो और ब्रह्म विद्या का जो सिद्धान्त सार है, जिस का पूर्व का संस्कार यद्यपि मलिन भी था, परन्तु सन्त तथा सच्छास्त्र के अनुसार जिसने दृढ़ पुरुषार्थ किया है, सो सिद्धता को प्राप्त हुआ है और जो मूर्ख जीव हैं, उन्होंने अपना पुरुषार्थ त्याग दिया है, इसी कारण संसार से मुक्त नहीं होता, पूर्व का जो कोई पाप कर्म किया होता, है, तिसके मल से पाप में दौड़ता है, अपना पुरुषार्थ त्यागने से अन्धा हो जाता है और अधिक दौडता जाता है।

जो श्रेष्ठ पुरुष हैं, उनका यह कर्त्तव्य है कि प्रथम तो पाँचो इन्द्रियों को वश में करना, शास्त्रानु-सार उनको चलाना, शुभ बासना दृढ़ करनी, अशुभ का त्याग करना, यद्यपि त्यागिनी दोनों वासना है, प्रथम शुभ वासना को इकट्ठा कर और अशुभ का

त्याग करे, जब शुद्ध वासना के द्वारा कषाय परि-पक्व होगा, अर्थात् यह अन्तःकरण शुद्ध होगा, हृदय में सन्त और सच्छास्त्रके सिद्धान्त का बिचार उत्पन्न होगा, तब तुमको आत्मज्ञान की सिद्धि होगी, उस ज्ञान के द्वारा आत्मा का साक्षात्कार होगा, और फिर क्रिया ज्ञान का भी त्याग हो जावेगा, केवल शुद्ध अद्वैत रूप अपना आपही शेष भासेगा, इस लिये हे राम ! तुम दूसरी सब कल्पनाको त्याग कर संतजन और सच्छास्त्र के अनुसार पुरुषार्थ करो।

इति श्री योगवाशिष्ठे मुमुक्षु प्रकरणे मुरादाबाद निवासी कन्हैयालाल मिश्र कृत भाषा टीकायां परम पुरुषार्थ वर्णनम् नाम नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

दशमः सर्गः

गमन वर्णनम्

वशिष्ठ जी बोले—हे राम ! मेरे बान्धव सरीखे बचनों का ग्रहण कीजिये, बान्धव वही हैं जो तुम्हारे

परम मित्र होंगे और दुःख से तुम्हारी रक्षा करेंगे। हे राम! यह जो मैं तुमसे मोक्ष का उपाय कहता हूँ, उसके अनुसार तुम पुरुषार्थ करो तब तुम्हारा परम अर्थ सिद्ध होगा, और यह जो चित्त संसार के भोग की ओर दौड़ता है उस भोगरूपी गढ़े में चित्त को मत गिरनें दो, भाग को विरस जान कर त्याग दो, वह त्याग तुम्हारा परम मित्र होगा, और त्याग भी ऐसा करो कि फिर लोगों का ग्रहण न होवे।

हे राम! यह जो मोक्ष उपाय नामक संहिता है, इसको एकाग्रचित्त करके सुनो। तिसके द्वारा परमानन्द की प्राप्ति होगी, प्रथम शम और मद को धारण करो, अर्थात् सम्पूर्ण संसार की बासना को त्याग दो, उदारता के द्वारा तृप्त होना, इसका नाम शम है, और दम अर्थात् बाह्य इन्द्रिय को बश में करना, जब इसको प्रथम धारण करोगे, तब परम तत्व का विचार आकर उत्पन्न होगा। और उस विचार से विवेक द्वारा परमपद मिल जायगा, जिस पद को

पाकर फिर कभी कष्ट नहीं होगा। अर्थात् तुमको नित्य अविनश्वर सुख की प्राप्ति होगी।

अतएव यह जो मोक्ष उपाय नामक संहिता है, उसके अनुसार पुरुषार्थ करो, तब आत्मपद को प्राप्त होगे, ब्रह्मा जी ने हमको पूर्व में जो कुछ उपदेश किया था, सो वह किस कारण किया था और तुमने उसको किस प्रकार धारण किया ? सो कहिये ?

वशिष्ठ जो बोले—हे रामचन्द्र ! शुद्ध चिदाकाश एक अनन्त, अविनाशी, परमानन्दरूप, चिदानन्द स्वरूप और ब्रह्म है। तिससे सम्वेदन स्पंदरूप होता है, सो विष्णु के द्वारा स्थित हुआ है, और विष्णु स्पन्द तथा निस्पन्द में एक रस है, कदाचित अन्य भाव को प्राप्त नहीं होते, जैसे समुद्र में तरंग उत्पन्न होती है, उसी प्रकार चिदाकाश से स्पन्द के द्वारा विष्णु उत्पन्न हुए हैं, उन विष्णु के स्वर्णवत् किरण वाले नाभी कमल से ब्रह्मा जी उत्पन्न हुए हैं, उन ब्रह्मा जी ने ऋषि तथा मुनीश्वरों सहित स्थावर, जंगम प्रजा उत्पन्न

की अर्थात् मनोराज्य के द्वारा ब्रह्मा जी ने जगत् के एक कोने में जम्बूद्वीप उत्पन्न किया, उसका नाम भरतखण्ड है, इसमें मनुष्यों को दुःख से आतुर देख कर ब्रह्मा जी को इस प्रकार करुणा उत्पन्न हुई, जैसे पुत्र को देख कर पिताको करुणा उत्पन्न होती है तब उसके सुख निमित्त ब्रह्माजी ने तप उत्पन्न किया जिससे उसको सुख मिले अनंतर उन मनुष्यों को आज्ञा दी कि 'तुम लोग तप करो' आज्ञानुसार उन्होंने तप किया, जिसके द्वारा वे स्वर्ग में पहुँचने लगे और वहाँ सुख भोग कर फिर नीचे को गिरने लगे। यह देख ब्रह्माजी ने सत्यबाक को उत्पन्न किया उनके उस धर्म के प्रतिपालन द्वारा लोकों को सुख मिलने लगा, वहाँ कुछ काल सुख भोग कर फिर गिरने लगे तब दुखी के दुखी रहे, तब ब्रह्मा जीने दान तीर्थादिकपुण्य क्रिया उत्पन्न करके उनको आज्ञा करी कि इनके सेवनसे तुम सुखी होगे जब वह जीव उनको सेवने लगे, तब बड़े पुण्यलोक को प्राप्त हुए और उनके सुख भोगने

लगे, फिर कुछ काल तक अपने कर्म के अनुसार भोग, भोगकर गिरे, तब तृष्णा से बहुत सुख दुःख हुए और दुःख से घबराये, तब ब्रह्मा जी ने देखा कि जन्म और मरण के दुःख से वे लोग महादीन होते हैं अतएव वही उपाय कीजिये कि जिससे उनका दुःख दूर होवे।

हे राम! ब्रह्माजी ने बिचार किया कि इसका दुःख आत्मज्ञान के बिना निवृत्त नहीं हो सकता। अतः आत्मज्ञान को उत्पन्न करना चाहिये, जो यह सुखी होवें। इस प्रकार बिचार कर वे आत्मतत्त्व का ध्यान करने लगे, आत्मतत्व के ज्ञान से संकल्प किया। उस ध्यान के करने से जो शुद्ध तत्त्वज्ञान है, उसकी मूर्ति मैं हो कर प्रगट हुआ, सो मैं कैसा हूँ? ब्रह्मा जी के समान हूँ, जैसे उनके हाथ में कमण्डल है, तैसे ही मेरे हाथ में भी कमण्डल है, जैसे उनके कण्ठ में रुद्राक्ष की माला है, तैसे ही मेरे कण्ठ में भी रुद्राक्ष की माला है, जैसे उनके ऊपर मृगछाला है,

तैसेही मेरे ऊपर भी मृगछाला है, इस प्रकार ब्रह्माजी का और मेरा समान आकार है तथा मेरा शुद्ध ज्ञान स्वरूप है, मुझको जगत् कुछ नहीं भासता, वरन् सुषुप्ति की नाईं भासता है, तब ब्रह्मा जी नें विचार किया कि इसको मैंने जीव के कल्याण के निमित्त उत्पन्न किया है और यह तो शुद्ध ज्ञान स्वरूप है। अर्थात् अज्ञान मार्गी को उपदेश तब होवे जब कुछ प्रश्नोत्तर होवे, और तब सत्य मिथ्या का बिचार होवे।

हे राम! जीव के कल्याण-निमित्त मुझको ब्रह्मा जी ने गोद में बिठाया, और शीश पर हाथ फेरा—उसके द्वारा मैं शीतल हो गया, जैसे चन्द्रमा की किरण के द्वारा शीतलता होती है, तैसे ही मैं भी शीतल होगया; तब ब्रह्मा जी ने मुझको जैसे हंस को हंस कहैं, इस प्रकार ही कहा। हे पुत्र! जीव के कल्याण के निमित्त एक मुहूर्त्त पर्य्यन्त तक अज्ञान को अंगीकार करो, श्रेष्ठ पुरुष वही है जो दूसरे के निमित्त भी अंगीकार करने आये हैं, जैसे

चन्द्रमा बहुत निर्मल है, परन्तु श्यामता को उसने अंगीकार किया है। तैसे ही तुम भी एक मुहूर्त्त तक अज्ञान को अंगीकार करो।

हे राम! ब्रह्माजी ने इस प्रकार मुझ से कह कर शाप दिया, कि अज्ञानी होगा, तब मैंने ब्रह्मा जी की आज्ञा मान कर शाप को अंगीकार किया, तब मेरा जो शुद्ध आत्मतत्त्व अपना आपा था, तिससे मैं अन्य की नाईं हो गया, मैं अपनी स्वभाव-सत्ता को भूल गया, और न जाग उठा, मुझको भाव अभाव रूप जगत् भासने लगा और तब मैंने अपने को ब्रह्माजी का पुत्र वशिष्ठ माना तथा भाँति भाँति के पदार्थों से युक्त इस संसार को भी जान लिया और उसमें पड़ कर चञ्चल चित्त हुआ। तब मैंने संसार जाल को दुःख रूप जान कर ब्रह्माजी से पूछा, हे भगवन्? यह संसार कैसे उत्पन्न हुआ और कैसे यह नष्ट होता है। हे राम! जब इस प्रकार ब्रह्मा जी से पूछा, तब उन्होंने भली प्रकार मुझको उप-

देश किया। उस उपदेश से मेरा अज्ञान सब नष्ट होगया जैसे सूर्य के उदय होने पर अन्धकार दूर हो जाता है तैसे ही मेरा अज्ञान दूर हो गया और मैं शुद्धता को प्राप्त हुआ, जैसे दर्पण को मार्जन करने से वह शुद्ध हो जाता है, तैसे ही मैं शुद्ध हो गया।

हे राम! मैं ब्रह्मा जी से भी अधिक हो गया। तब मुझको परमश्रेष्ठी ब्रह्मा जी ने आज्ञा दी, हे पुत्र! तुम जम्बूद्वीप भरतखण्ड में चले जाओ तुमको अष्ट प्रजापति का अधिकार है, वहाँ जाकर जीवों को उपदेश करो। तथा जिसको संसार में सुख की इच्छा होवे, उसको कर्म मार्ग का उपदेश करना, उससे वे स्वर्गादिक का सुख भोगेंगे, तथा संसार से विरक्त होंगे, जिनको आत्मपद की इच्छा होवे, उनको ज्ञान उपदेश करना, अतएव अब तुम भूलोक को जाओ। हे राम! इस प्रकार मेरा उपदेश और उत्पत्ति हुई और इस प्रकार मेरा आगमन हुआ है।

इति श्री योगवाशिष्ठे मुमुक्षु प्रकरणे मुरादाबाद निवासी कन्हैयालाल मिश्र कृत भाषाटीकायां वशिष्ठोत्पत्ति वशिष्ठोपदेशागमनं नाम दशमः सर्गः ॥ १० ॥

एकादशः सर्गः

अथ वशिष्ठोपदेश वर्णनम्

वशिष्ठ जी बोले—हे राम ! इस प्रकार पृथ्वी में मेरा आगमन हुआ है। जिसको ज्ञान की इच्छा है, उसको पूर्ण करने के लिये ब्रह्मा जी ने मुझको उत्पन्न किया है।

श्रीरामचन्द्र जी ने कहा—हे भगवन् ! उस ज्ञान की उत्पत्ति से अनन्त जीवों की शुद्धि कैसे हुई। सो कहिये।

वशिष्ठ जी बोले—हे राम ! जो शुद्ध आत्म-तत्त्व है, तिसका स्वभाव रूप सम्वेदन स्फूर्ति है, सो वह ब्रह्माजी रूप होकर स्थित हुई है। जैसे समुद्र अपनी द्रवता के द्वारा तरङ्ग रूप होता है, तैसे ही ब्रह्मा जी हुए हैं। फिर उन्होंने सम्पूर्ण जगत् को उत्पन्न किया और तीनों काल उत्पन्न किये। तब कितना काल व्यतीत हुआ और कलियुग आया

उसके द्वारा जीवों की बुद्धि मलीन हो गई और पाप में बिचरने लगे। शास्त्र वेद की आज्ञा उल्लंघन करने लगे। इस प्रकार धर्म की मर्यादा घट गई तथा पाप प्रगट हुआ, जो कुछ राजधर्म की मर्यादा थी सो भी सब नष्ट होगई, और अपनी इच्छा के अनुसार जीव विचरने लगे। इसी लिये कष्ट पाने लगे। उसको दुखी देख कर ब्रह्मा जी को करुणा उत्पन्न हुई। फिर उस दया के वश होकर उन्होंने मुझको भूलोक में भेजा। और कहा—हे वत्स! तुम जाकर धर्म की मयार्दा को स्थापित करो और ज़ीवों को शुद्ध उपदेश करो।

जिसको योग की अभिलाषा हो, उसको कर्म-काण्ड का उपदेश करना। तथा जप, तप, स्नान सन्ध्या व यज्ञादिक का उपदेश करना, और जो संसार से विरक्त तथा मुमुक्ष हैं और जिनको परमपद पाने की इच्छा है उनको ब्रह्मविद्याका उपदेश करना।

हे रामचन्द्र ! जिस प्रकार मुझको आज्ञा करके भूमिलोक में भेजा, तैसे ही सनत्कुमार, नारद को भी आज्ञा दी। तब हम सब ऋषीश्वर इकट्ठे होकर विचारने लगे, कि जगत् की मर्यादा किस प्रकार होवे। और जीव शुभमार्ग में कैसे विचरें। तब हमने भी यह विचार किया, कि प्रथम राज्य को स्थापन करना चाहिये, जो जीव उनकी आज्ञानुसार बिचरें। अतएव प्रथम दण्डकर्ता राजा स्थापन किया, जो कि बड़ा वीर्यवान तेजवान और उदार आत्मा हुआ था। उस राजा को भी हमने अध्यात्म विद्या का उपदेश किया ! उसके द्वारा वह परम पद को प्राप्त हुआ जो कि परमानन्द रूप अविनाशी पद है, उस ब्रह्मविद्या का उपदेश उसको हुआ, तब वह सुखी हुआ इस कारण से ब्रह्म विद्या का नाम राजविद्या है, तब हमने भी वेद, शास्त्र, श्रुति पुराण के द्वारा धर्म की मर्यादा स्थापन की और जप, तप, यज्ञ, दान, स्नान आदि

क्रिया को प्रगट किया और कहा कि अरे जीव ! तुम इसके सेवन से सुखी होगे, तब सब फल को धारण कर उनको सेवने लगे उनमें कोई विरला ही निर-हंकार हृदय शुद्धता के निमित्त कर्म करता था।

हे राम ! जो मूर्ख थे, सो कामना के निमित्त मन में भूलके कर्म करते थे, सो घटी यन्त्र की नाईं भटकते फिरते थे, वे कभी ऊर्ध्व और कभी नीचे आते थे, और जो निष्काम कर्म करते थे, उनका हृदय शुद्ध हो जाता था। फिर वे ब्रह्मविद्या के अ-धिकारी होते थे, उनके उपदेश द्वारा आत्मपद की प्राप्ति होती थी, इस प्रकार वह जीवनमुक्त हुए हैं, कोई राजा विदित वे सिद्ध हुए हैं, सो राज्य परम्परा चलाते हुए हमारे उपदेश द्वारा ज्ञान को प्राप्त हुए हैं, और राजा दशरथजी भी ज्ञानवान् हुए हैं, तुम भी इसी दशा को प्राप्त हुए हो, सो स्वभाव के द्वारा देश शुद्धि करके हुए हो इसी कारण से तुम श्रेष्ठ हो, जो कोई अनिष्ट दुःख प्राप्त होता है, उससे विरक्तता

उत्पन्न होती है, सो तुमको नहीं हुई, तुमको सब इन्द्रियों के विषय विद्यमान हैं, ऐसा होने पर भी तुम को वैराग्य उत्पन्न हुआ है, इस लिये तुम श्रेष्ठ हो।

हे राम ! जो समान आदिक कष्ट के स्थान वर्णन किये, उनको देखने पर सबको वैराग्य उत्पन्न होता है कि कुछ नहीं अन्त में मर जाना ही है उनमें जो कोई श्रेष्ठ पुरुष होता है सो वैराग्य को दृढ़ कर रखता है, और जो मूर्ख हैं, सो विषय में आसक्त हो जाते हैं, अतएव जिसको अकारण वैराग्य उत्पन्न होता है, वह श्रेष्ठ है। हे राम जो श्रेष्ठ पुरुष हैं, वह अपने वैराग्य तथा अभ्यास के बल करके संसार बन्धन से मुक्त हो जाते हैं। जैसे हाथी बंधन को तोड़कर अपने बल से निकल जाता है, तब सुखी होता है इसी प्रकार ज्ञानी जन वैराग्य अभ्यास के बल द्वारा बन्धन से छूट जाता है।

हे राम ! यह संसार महा अनर्थ रूप है, जिस पुरुष ने अपने पुरुषार्थ के द्वारा अपने बंधन को नहीं

तोड़ा, उसको राग द्वेषरूपी अग्नि जलाती है, तथा जिस पुरुष ने अपने पुरुषार्थ के द्वारा शास्त्र और गुरु को प्रणाम करके ज्ञान साधा है, वह उस को प्राप्त हुआ है, उसको अध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक, तप नहीं जला सकता, जैसे वर्षाकाल में बहुत वर्षा होने पर वन को दावानल नहीं जला सकता, तिसी प्रकार ज्ञानी को आध्यात्मिक आदि ताप कष्ट नहीं दे सकते।

हे राम! जिन श्रेष्ठ पुरुषों ने संसार को विरस जान कर त्याग किया है उनको संसार का पदार्थ नहीं गिरा सकता, किंतु जो मूर्ख हैं, उनको गिरा देता है जैसे आँधी के वेग से वृक्ष गिर जाते हैं, परन्तु कल्पवृक्ष नहीं गिरता, तैसे ही हे राम! श्रेष्ठ पुरुष वही हैं जिसको संसार विरसहो गया है, वह केवल आत्मतत्त्व की इच्छा करके तिससे परायण हुए हैं, तिनको ही ब्रह्मविद्या का अधिकार है, वही उत्तम पुरुष हैं। हे राम! तुम भी तैसे ही उज्ज्वल

पात्र हो जैसे कमल पृथ्वी में बीज होते हैं तैसेही तुमको मैं उपदेश करता हूँ और जिसको भोग की इच्छा है तथा संसार की ओर यत्न करता है, वह पशुके समान है, किंतु श्रेष्ठ पुरुष वही है जिसमें संसार से तरने का पुरुषार्थ होता है।

हे राम ! प्रश्न उनसे ही करना चाहिये कि जो मेरे प्रश्न का उत्तर दे सकें और जिनमें उत्तर देनेकी शक्ति नहीं दिखाई देवे, उससे कभी प्रश्न न करें, किंतु जो उत्तर देने में सामर्थ हैं, चाहे उनके वचन में श्रद्धा न हो, तबभी उनसे प्रश्न करें। क्योंकि दम्भसे प्रश्न करने में जो ज्ञान प्राप्त होता है, गुरु भी उसी को उपदेश देता है। संसार से विरक्त होवे और केवल आत्म परायण होने की श्रद्धा होवे, तथा आस्तिक भाव होवे, ऐसा पात्र देख कर उपदेश करें, हे राम ! जब गुरु और शिष्य दोनों उत्तम होते हैं, तब वचन शोभते हैं, तुम उपदेश के शुद्ध पात्र हो। शास्त्र में शिष्य के

जितने गुण वर्णन किये हैं, वे सब तुममें मिलते हैं और मैं उपदेश करने में समर्थ हूँ अतएव कार्य शीघ्र ही सिद्ध होगा।

हे राम! शुभ गुण के साथ तुम्हारी बुद्धि निर्मल होरही है, मेरा जो सिद्धांत का सार वचन है, सो तुम्हारे हृदय में प्रवेश कर रहैगा जैसे उज्ज्वल वस्त्र में केशर का रंग लगता है, सूर्य के उदयसे जैसे सूर्यमुखी कमल खिलते हैं, तैसे तुम्हारी बुद्धि शुभ गुण के द्वारा खिल आई है। हे राम जो कुछ शास्त्र सिद्धान्त आत्मतत्त्व मैं तुमसे कहता हूँ उसमें तुम्हारी बुद्धि शीघ्र प्रवेश करेगी, जैसे निर्मल जल में सूर्य की क्रांति प्रवेश करती है, तैसेही तुम्हारी बुद्धि आत्मतत्त्व में शुद्धता से प्रवेश करेगी।

हे राम! तुम्हारे सन्मुख हाथ जोड़ कर प्रार्थना करता हूँ कि मैं तुमको जो कुछ उपदेश करूँ उसमें तुम आस्तिक भावना रखना। इन वचनों से तुम्हारा

कल्याण होगा, किंतु यदि तुममें धारणा शक्ति या श्रद्धा न हो तो प्रश्न मत करना। क्योंकि यदि शिष्य को गुरु के वचन में आस्तिक भावना होती है तो उसका कल्याण शीघ्र होता है, इसके कारण मेरे वचन में आस्तिक भाव रखना। अब जिसके द्वारा तुम आत्मपद को प्राप्त होगे सो मैं कहता हूँ प्रथम तो यह करो कि जो अज्ञानी जीव में असत्य बुद्धि है, तिसका संग त्याग करो।

मोक्षद्वार के जो चार द्वारपाल हैं, उनसे मित्र भावना करना, जब उनसे मित्र भाव होगा, तब वह मोक्षद्वार को पहुँचा देंगे, तब तुमको आत्म दर्शन होगा, उन द्वारपालों के नाम सुनो, अर्थात् शम, संतोष, विचार और सत्संग यह चारों द्वारपाल हैं, जिस पुरुष ने उनको वश में किया है, उसको यह शीघ्र मोक्ष रूपी द्वार के अन्दर कर देते हैं।

हे राम! यदि यह चारों वश में न होवें, तो तीन को तो वश में करही ले, अथवा दो को वश में

कर लो, तब फिर यह चारो ही वश में हो जायँगे क्योंकि इन चारों का परस्पर स्नेह है, जहाँ एक आता है तहाँ चारों ही आकर रहते हैं, जिस पुरुष ने इनसे स्नेह किया है वह सुखी हुआ है, और जिसने इनका त्याग किया है, वह दुःखी हैं। हे राम ! चाहे प्राण का त्याग होवै, तो भी एक के साथी को तो वल करके वश में कर लेवे, क्योंकि एक के वश करने पर चारों ही वशी होंगे। तुम्हारी बुद्धि में शुभ गुण ने आकर निवास किया है, जिस प्रकार सूर्य में सब प्रकाश आकर एकत्र होता है तिसी प्रकार राम और शास्त्रों ने जिन निर्मल गुणों का वर्णन किया है वे सब तुममें पाये जाते हैं। हे राम ! अब तुम मेरे वचनों को सुनने के अधिकारी हुए हो, जिस प्रकार तन्द्री के सुनने को अन्देशा अधिकारी होता है। जैसे चन्द्रमा के उदय से चन्द्रबंशी कमल खिल जाते हैं, तैसे ही शुभ गुणों के द्वारा तुम्हारी बुद्धि खिल उठी है।

हे राम ! सत्संग और सच्छास्त्र के द्वारा बुद्धि

को तीक्ष्ण करने पर शीघ्र आत्मतत्व में प्रवेश होता है, इसलिये श्रेष्ठ पुरुष वही हैं जिन्होंने संसार को विरस जान कर त्याग किया है, तथा संत और सच्छास्त्र के वचन द्वारा आत्मपद पाने का यत्न करते हैं, वे अविनाशी पद को प्राप्त होते हैं और जो शुभ मार्ग त्याग कर संसार की ओर लगे हैं, वे महामूर्ख हैं जैसे जल शीतलता के द्वारा बरफ हो जाता है, तैसे ही अज्ञानी मूर्खता करके दृढ़ आत्म मार्ग में जड़ हो रहे हैं। हे राम ! अज्ञानी के हृदय रुपी बिल में दुराशा रूपी सर्प रहता है, सो कभी शांति नहीं पाता और आनन्द से कभी प्रफुल्लित नहीं होता, तथा अज्ञान से सदा संकुचित रहता है, जैसे अग्नि में मांस सकुच जाता है। हे राम ! आत्मपद के साक्षात्कार में विशेष आवरण आशा ही है जैसे सूर्य्य के आगे मेघ का आवरण होता है तैसे ही आत्मतत्त्व के आगे दुराशा आवरण है जब आशा रूपी आवरण दूर होता है, तब ही आत्मपद का साक्षात्कार होता है।

हे रामचन्द्र ! आशा तब दूर होती है, जब संत की संगति और सच्छास्त्र का विचार होता है।

हे राम ! संसार रूपी एक बड़ा वृक्ष है, सो बोध रूप खड्ग द्वारा काट दिया जाता है जब सत्संग और सच्छास्त्र के द्वारा तीक्षण बुद्धि होती है, तब संसार रूपी भ्रम का वृक्ष नष्ट हो जाता है। जब शुभ गुण होते हैं, तब आत्म ज्ञान आकर उपस्थित होता है, जहाँ कमल होता है तहीं भौंरे आकर मंडराते हैं, तब, शुभ गुण में आत्मज्ञान रहता है, हे राम ! शुभ गुण शुभ रूपी पवन के द्वारा जब इच्छा रूपी मेघ दूर होता है, तब आत्मरूपी चन्द्रमा का साक्षात्कार होता है, जैसे चन्द्रमा के उदय होने से आकाश शोभायमान होता है, तिसी प्रकार आत्मा के साक्षात्कार होने पर तुम्हारी बुद्धि खिलेगी।

इति श्री योगवाशिष्ठे मुमुक्ष प्रकरणे मुरादाबाद निवासी कन्हैयालाल मिश्र कृत भाषाटीकायां वशिष्ठोपदेशो नाम एकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

द्वादशः सर्गः

अथ तत्त्वज्ञ माहात्म्य वर्णनम्

वशिष्ठजी बोले—हे राम ! अब तुम मेरे वचन के अधिकारी हो, क्योंकि तप, वैराग्य, विचार संतोष आदि जो शुभ गुण संत तथा शास्त्रों ने कहे हैं, वे सब तुम में मिलते हैं। मेरे वचन को रज, तम, गुण त्याग कर शुद्ध सात्विकवान् होकर सुनो। राजस नामक विक्षेप और तामस नामक लय जो निद्रा में होता है सो उन दोनों को त्याग कर सुनो। शास्त्र में जितने जिज्ञासु के गुण वर्णन किये हैं, वे सब तुम में विद्यमान हैं। इस लिये तुम और जितने गुरु के गुण शास्त्र में कहे हैं, वे सब मुझ में विद्यमान् हैं, जैसे रत्न के द्वारा समुद्र सम्पन्न है, तैसे ही मैं सम्पन्न हूँ; इससे मेरे वचन के तुम अधिकारी हो। किन्तु मूर्ख को मेरे वचन का अधिकार नहीं, हे राम ! जैसे च-

न्द्रमा के उदय होने पर चन्द्रकांत मणि द्रवीभूत होता है, और तब उसमें से अमृत झरता है, किंतु पत्थर की शिला में द्रवीभूत नहीं होता, तैसे ही जो जिज्ञासु होता है, उसको परमार्थ वचन लगता है, और अज्ञानी को नहीं लगता, हे राम! शिष्य तो शुद्ध पात्र होवे किन्तु उपदेश करने हारा ज्ञानवान् न होवे तो उसको आत्मा का साक्षात्कार नहीं होता, जैसे चन्द्रमुखी कमलिनी निर्मल हो, किन्तु चन्द्रमा न हो तब वह प्रफुल्लित नहीं होती, अतएव तुम मोक्ष के पात्र हो और मैं भी परम गुरु हूँ, मेरे उपदेश से तुम्हारा अज्ञान नाशको प्राप्त हो जायगा।

मैं मोक्ष का उपाय कहता हूँ, जब तुम उसको भले प्रकार विचारोगे, तब मलिन रूप मन की वृत्तियों का अभाव हो जायगा, जैसे महा प्रलय के सूर्य से मंदराचल पर्वत जल जाता है, अतएव हे राम! वैराग्य तथा अभ्यास के बल द्वारा इस मन को अपने विषे लीन कर शांतात्मा होओ, बालकावस्था से ले

कर अभ्यास कर रक्खा है, अस्तु मन उपशम पाकर आत्मपद को प्राप्त होगा। हे राम! सत्संग तथा सच्छास्त्र द्वारा जिन्होंने आत्मपद पाया है, वे सुखी हुए हैं, फिर उनको दुःख नहीं हुआ, क्योंकि दुःखतो देहाभिमान से होता है सो देह का अभिमान तो तुम पहले ही त्याग चुके हो, तैसे ही जिसने देहका अभिमान त्याग दिया है, और देह को आत्मा करके फिर ग्रहण नहीं किया है, वह सुखी रहता है, हे राम! जिसने आत्मा का वल धरके विचार द्वारा आत्म पद प्राप्त किया है, वह वास्तिक आनन्द से सदा पूर्ण है, उसको सब जगत् आनन्द रूप भासता है, किन्तु जो असम्यकदर्शी हैं, उनको अनर्थ रूप भासता है। हे राम! यह जो संसरण रूप संसार सर्प है सो अज्ञानी के हृदय में दृढ़ हो गया है, पर योग रूपी गरुड़ मंत्र के द्वारा नष्ट हो जाता है, उसमें अन्यथा नहीं होता, सर्प का विष तो एक जन्म में मारता है, किन्तु संरक्षण रूप विष अनेक जन्मों तक

मारता चला जाता है। उसको कभी शांति नहीं मिलती।

हे राम! जो पुरुष सत्संग तथा सच्छास्त्र के वचनों से आत्मपद को पा गया है, वह आनन्दित हुआ है, और उसको अंतर्बाहिर सब जगत् आनन्द रूप भासता है, तथा समस्त क्रिया करने में आनन्द विलास होता है, जिसने सत्संग एवं सच्छास्त्र का विचार छोड़ दिया है, और संसार के संमुख है तिसको संसार अनर्थ रूप है; वह संसार उसको ऐसा दुःख देता है; जैसे सर्प के काटने से दुःख होते हैं; मानो शस्त्र से घायल होते हैं; और अग्नि में पड़ा जलता हो, जेवरी के साथ बँधा हो, और अन्ध कूप में गिर कर कष्ट पाता हो, तैसे ही संसार में मनुष्य दुःख पाते हैं। हे राम! जिस पुरुष ने सत्संग तथा सच्छास्त्र द्वारा आत्मपद प्राप्त नहीं किया, वह ऐसे कष्ट पाते हैं यथा नरक रूपी अग्नि में जलना, चक्की में पीसना, पत्थरों की वर्षा से चूर्ण होना, कोल्हू में पिलना, और शस्त्र से कटना, इत्यादि। हे राम! ऐसा दुःख कोई

नहीं; जो इस जीव को नहीं मिलता हो, आत्मा के प्रसाद से सब दुःखहीन हैं और जिन पदार्थ को यह मनोहर जानता है, सो चक्र की नाईं चञ्चल है, कभी स्थिर नहीं रहते, जो पुरुष सत्मार्ग को त्याग करे इनकी इच्छा करते हैं, वे महादुःख को प्राप्त होते हैं, तथा जिस पुरुष ने संसार को विरस जाना है और पुरुषार्थ की ओर दृढ़ हुआ है, उसको आत्मपद मिल गया है।

हे राम! जिस पुरुष को आत्मपद मिल गया है, उसको फिर दुःख नहीं मिलता, और जिसका दुःख नष्ट नहीं होता, तो उसको ज्ञान के निमित्त कोई पुरुषार्थ ही नहीं है, जो अज्ञानी हैं उनको संसार दुःखरूप है, किंतु ज्ञानी को सब जगत् आनन्द रूप है, उसको कोई भ्रम नहीं रहता। हे राम ज्ञानवान् में नाना प्रकार की चेष्टा भी दिखाई देती हैं, किंतु तो भी वह सदा शांत रूप और आनन्द रूप है, उसको संसार का दुःख कोई नहीं स्पर्श कर सकता

क्योंकि वह ज्ञानरूपी कवच धारण कर रहा है ॥

हे राम ! ज्ञानवान् को भी दुःख होता है, बड़े बड़े ब्रह्मर्षि तथा अत्यन्त ज्ञानवानों को भी दुःख मिला है, किंतु वे उस दुःख के आपड़ने पर घबराये नहीं।

ज्ञानवान् ने ज्ञान का कवच पहिराया है। इस से कोई दुःख स्पर्श नहीं करता, सदा आनन्द रूप है, जैसे ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र नाना प्रकार की चेष्टा करते दिखाई देते हैं और अन्तर से शान्त रूप हैं, इसी प्रकार और जो ज्ञानवान् उत्तम पुरुष हैं सो शांत रूप हैं उनको कर्ताका अभिमान कुछ नहीं होता। हे राम ! अज्ञान् रूपी जो मेघ है तिसके द्वारा मोह रूपी कुहाड़े का वृक्ष होता है, सो वह ज्ञान रूपी शरत्काल नष्ट हो जाता है, अतएव स्वसत्ता को प्राप्त होता है; और सदा आनन्द रूप से पूर्ण है; हे राम ! जो कुछ क्रिया करते हैं; सो उनको विलास रूप हैं, और सब जगत आनन्द रूप है तथा शरीर रूपी रथ, इन्द्रिय रूपी अश्व और मन रूपी लगाम

अश्व को खैंचती है; और बुद्धि रूपी रथ वही है; जिस रथ में वह पुरुष बैठा है और ज्ञानवान् के इन्द्रिय रूपी अश्व इसको खोटे मार्ग में डालते हैं और ज्ञानवान् के इन्द्रिय रूपी अश्व ऐसे हैं, कि जहाँ जाते हैं, वहाँ आनन्द रूप हैं, किसी जगह में खेद नहीं पाते सब क्रिया में उनको विलास है और सर्वदा आनन्द से तृप्त रहते हैं।

इति श्री योगवाशिष्ठे मुमुक्षु प्रकरणे मुरादाबाद
निवासी कन्हैयालाल मिश्रकृत भाषाटीकायां
सत्वङ्ग माहात्म्यं नाम द्वादशः सर्गः ॥१२॥

त्रयोदश सर्गः

अथ शम वर्णनम्

वाशिष्ठजी बोले—हे राम! तुम इस दृष्टि को आश्रय करो कि जिससे तुम्हारा हृदय पुष्ट होवे, और संसार के इष्ट अनिष्ट से चलायमान न होवे। जिस पुरुष को इस प्रकार आत्मपद की प्राप्ति हुई है, सो

वह परम आनन्दित हुआ है, वह शोक का कर्त्ता नहीं है, न याचना करता है, जो हेयोपादेय से रहित परम शान्ति रूप अमृत द्वारा पूर्ण रहे हैं, सो वह पुरुष नाना प्रकार की चेष्टा करते दिखाई देते हैं, परन्तु कुछ नहीं करते, जहाँ उनके मनकी वृत्ति जाती है, तहाँ आत्मसत्ता भासती है, सो आत्मानन्द द्वारा पूर्ण हो रहे हैं जैसे पूर्णमासी का चन्द्रमा अंमृतसे पूर्ण रहता है, तैसे ही ज्ञानवान् परमानन्द से पूर्ण रहता है। हे राम! यह जो मैंने तुमसे अमृत रूपी वृत्ति कही है, इसको जब तुम जानोगे, तब तुमको साक्षात् होगा। क्योंकि जब जिसको आत्मज्ञान की प्राप्ति होती है, तब सब दुःख नष्ट हो जाते हैं जैसे चन्द्रमा के मण्डल में ताप नहीं होता और अज्ञानी को शान्ति कभी नहीं होती, बल्कि वह जो कुछ क्रिया करता है, उसमें दुःख पाता है, जैसे (कक्कर के वृक्ष में) कीकड़ के वृक्ष में कण्टककी उत्पत्ति होती है, तैसेही अज्ञानी को दुःख की उत्पत्ति होती है।

हे राम ! इस जीव को मूर्खता के द्वारा बड़े बड़े दुःख प्राप्त होते हैं, ऐसा अद्भुत दुःख और कोई नहीं और किसी आपदा से भी ऐसा दुःख नहीं होता जैसा दुःख मूर्खता से मिलता है। हे राम ! हाथ में ठिकरा लेकर चाण्डालके घर की भिक्षा ग्रहण करे, और आत्मतत्व की जिज्ञासा होवे, तो भी अन्य ऐश्वर्य से श्रेष्ठ है परन्तु मूर्खता से जीना व्यर्थ है, उस मूर्खता को दूर करने के लिये मैं मोक्ष का उपाय कहता हूँ।

हे राम ! यह मोक्ष उपाय परम बोध का कारण है, कुछेक बुद्धि संस्कृत होवे, अर्थात् पदार्थको जाननेहारी होवे, और मोक्ष उपाय शास्त्र को विचारे, तो उसकी मूर्खता नष्ट हो जावगी और आत्मपद को प्राप्ति होगी। जैसे आत्मबोध का कारण यह शास्त्र है, वैसा और शास्त्र त्रिलोकी में कोई नहीं। अनेक प्रकार के दृष्टान्त सहित इतिहास है, उनको विचारने से तब परमानन्द को प्राप्त होगा,

क्योंकि अज्ञान रूपी तिमिर का नाश करने को यह ज्ञान रूपी शलाका है। जैसे अन्धकार को सूर्य नाश करता है, तैसे ही अज्ञान को यह शास्त्र का विचार नाश कर देता है। हे श्रीरामचन्द्र! जब जिस प्रकार इसका कल्याण होता है, सो भी सुनो। ज्ञानवान् गुरु शास्त्र का उपदेश करे और अपने अनुभव से ज्ञान पावे। जब गुरु और शास्त्र तथा अपना अनुभव यह तीनों इकट्ठे मिलें; तब ही इसका कल्याण हो जाता है। जब तक सच्चे आनन्द को प्राप्त नहीं होवे, तब तक दृढ़ अभ्यास न करे। उस सच्चे आनंद को प्राप्ति करानेहारा मैं गुरु हूँ। जीव मात्र का मैं परम मित्र हूँ। ऐसा मित्र कोई अन्य नहीं। हमारी सङ्गति, जीव को आनन्द देने हारी है। अतएव जो कुछ मैं कहता हूँ सो तुम करो।

हे राम! यह जो संसार के भोग हैं, सो क्षण मात्र हैं। इससे इनको त्याग दो, और विषय के परिणाम में दुःख अनन्त हैं, इनको दुःख रूप जान

कर त्याग दो और हम सरीखे हो, ज्ञानवान् का सङ्ग करो क्योंकि हमारे वचन के विचार से तुम्हारे सब दुःख नष्ट हो जायँगे। हे राम! जिस पुरुष ने हमारे सङ्ग प्रीति करी है, उसको हमने आनन्द पद की प्राप्ति दी है, जिस आनन्द से ब्रह्मादिक आनन्दित हुए हैं, तथा और भी बहुत से आनन्दित हुए हैं, सो सच्चे सुख निःदुःख को प्राप्त हुए हैं, सो हे राम! श्रेष्ठ पुरुष वही है, जिसने हमारे साथ प्रीति की है, जिसने सन्त शास्त्र के विचार द्वारा दृश्य का अदृश्य जाना है, और निर्भय हुआ है, आत्माका प्रमाद जीव को दीन करता है, अज्ञान का हृदयरूपी कमल तब तक संकुचित रहता है, जब तक तृष्णा रूपी रात रहती है, और जब ज्ञानी रूपी सूर्य उदय होता है तब तृष्णा रूपी रात नष्ट हो जाती है, और हृदय रूपी कमल आनन्द से खिल जाता है।

हे राम! जिस मनुष्य ने परमार्थ को त्याग

दिया है, और संसार के खान पान आदि भोग में मग्न होकर डूब गया है, उसको तुम मेढ़क जानो जैसे कीचमें पड़ा हुआ मेढ़क शब्द करता है, तैसाही वह पुरुष है। हे राम ! यह संसार घोर आपत्ति का समुद्र है। अतएव जो श्रेष्ठ पुरुष हैं, सो सत्सङ्ग और सत्सास्त्रके द्वारा संसार समुद्र से पार हो जाते हैं, तथा परमानन्द को प्राप्त होते हैं, अर्थात् आदि, मध्य, अन्त रहित निर्भय पद को प्राप्त होते हैं, और जो पुरुष संसार समुद्र के सन्मुख हुआ है। सो दुःख से भी दुःख रूप पद को प्राप्त होता है। कष्टप्रद नरक को प्राप्त होता है। जैसे जो विष को विष जान तिसका पान करता है, सो विष उसको नाश ही कर देता है, तैसे ही जो पुरुष संसार को असत्य जान कर फिर भी संसार की ओर यत्न करता है सो मृत्यु को प्राप्त होता है।

हे राम ! जो पुरुष आत्मपद से विमुख है और आत्मपद को कल्याण रूप जानता है, तथा आत्मपद

के अभ्यास को त्याग कर संसार की ओर दौड़ता है, सो जैसे किसी के घर में अग्नि लगी और घर वाला तृण की शय्या पर शयन करता हो, सो जैसे वह नाश को प्राप्त होगा, तैसे ही जन्म मृत्यु को प्राप्त होवेंगे और पुरुष संसार के पदार्थ देख कर रोग दोषवान् हुए हैं, सो सुख बिजली की चमक के समान है, जो होकर मिट जाता है, स्थिर नहीं रहता। तैसे ही संसार का दुःख आगमापायी है।

हे राम! यह संसार अविचार से भासता है, और विचार किये से लीन हो जाता है, और जो विचार किये से लीन नहीं होता, तो तुमको उपदेश करने का कुछ काम नहीं था, अतएव वह विचार किये से लीन हो जाता है, इसी कारण पुरुषार्थ करना चाहिये। जैसे हाथ में दीपक होवे, और अन्धा हो कर कूप में गिरे, सो मूर्खता है, जैसे संसार भ्रम के निवारण करनेहारे गुरु शास्त्र विद्यमान हैं, उनकी शरण न आवे, सो मूर्ख है। हे राम! जो पुरुष

यत्न की संगति, और सच्छास्त्र के विचार द्वारा आत्मपद को प्राप्त हुआ है, सो पुरुष केवल कैवल्य भाव को प्राप्त हुआ है, अर्थात् वह शुद्ध चैतन्य को प्राप्त हुआ है, और संसार भ्रम उसका निवृत्त हो गया है।

हे राम ! यह संसार मन के संसरण से उत्पन्न होता है, सो इसका कल्याण बान्धव और धन तथा पूजा करके भी नहीं होता है, और न तीर्थ तथा देव द्वारा करके ही होता है, और ऐश्वर्य से भी नहीं होता, केवल एक मनके जीतने से कल्याण हो जाता है।

हे राम ! जिसको ज्ञानी परम पद कहते हैं, और रसायण कहते हैं, जिसके पाये से इसका नाश नहीं होता और अमर हो जाता है तथा सब सुख की पूर्णता होती है, सो इसका साधन समता और सन्तोष है, इनसे ज्ञान उत्पन्न होता है, बस ज्ञान रूपी एक वृक्ष है उसकी फूल शान्ति है और स्थिति इस का फल है जिस पुरुष को यह ज्ञान प्राप्त हुआ है,

उसी को शान्ति मिली है, और वही निर्लेप रहता है, तिसको संसार का भावाभाव रूप स्पर्श नहीं करता है, जैसे आकाश में सूर्य उदय होता है, तब जगत् की क्रिया होती है, और फिर जब वह छिप जाता है, तब जगत् की क्रिया भी लीन हो जाती है, अतएव जैसे क्रिया होने न होने में आकाश ज्यों का त्यों है, तैसेही ज्ञानवान् सदा निर्लेप है, तिस आत्मज्ञान की उत्पत्तिका उपाय यह मेरा श्रेष्ठ शास्त्र है।

हे राम ! जो पुरुष इस मोक्षोपाय शास्त्र को श्रद्धा संयुक्त पढे अथवा सुनो तो उसी दिन से मोक्ष का भागी हो जावे, मोक्ष के चार द्वारपाल हैं सो मैं तुमसे कहता हूँ, सो इनमें से एक भी जब अपने वश में होवे, तव मोक्ष के द्वार में इसका शीघ्र प्रवेश होवे, अब मैं चारों का नाम कहता हूँ सो सुनो, हे राम ! यह शम इसका परम विश्राम का कारण है और यह संसार जो दीखता है सो मरुस्थल की नदी के समान है, इसको देख कर मूर्ख अज्ञान रूपी जो

मृग हैं, सो सुख रूप जल जान कर दौड़ते हैं और शान्ति को नहीं पाते, जब शम रूपी मेघ की वर्षा होती है, तब सुखी होते हैं, हे राम ! शम ही परम आनन्द है, और शम ही परम पद और शिवपद है, जिस पुरुष ने शम पाया है, सो संसार समुद्र से पार हुआ है, तिसके शत्रु भी मित्र हो जाते हैं, हे राम ! जब चन्द्रमा उदय होता है, तब अमृत की किरणें फूटती हैं तथा शीतलता होती है, तैसे ही जिसके हृदय में शमरूपी चन्द्रमा उदय होता है, उसके सब ताप मिट जाते हैं, तथा परम शान्ति होती है, हे राम ! शम देवता अमृत के समान है, वही परम अमृत है, शम द्वारा इस को परम शोभा प्राप्त होती है, जैसे पूर्णमासी के चन्द्रमा की कांति परम उज्ज्वल होती है, तैसे ही शमको पाकर उसकी उज्ज्वल कांति होती है, जैसे विष्णु के दो हृदय होते हैं, अर्थात् एक अपने शरीर में और दूसरा सन्त में है, तैसे ही इसके दो हृदय होते हैं, एक अपने शरीर में, दूस-

रा शम भी इसका हृदय होता है, ऐसा आनन्द अमृत के पान किये से भी नहीं होता तथा लक्ष्मी की प्राप्ति से भी नहीं होता, जो आनन्द शमवान् पुरुष को होता है।

हे राम ! प्राण से भी प्रिय कोई होवे, सो अंतर्ध्यान कर फिर प्राप्त होवे, तैसा आनन्द नहीं होवे, जैसा आनन्द शमवान् को होवे, तिसके दर्शन से भी आनन्द प्राप्त होता है, और ऐसा आनन्द राजा को भी नहीं होता, जो बाहर से श्रेष्ठ मंत्री होता है और अन्तर से सुन्दर स्त्रियाँ होती हैं, तिनसे भी ऐसा आनन्द नहीं होता, जैसा आनन्द शम सम्पन्न पुरुष को होता है। हे राम ! जिस पुरुष को शम की प्राप्ति हुई है, सो वन्दना करने योग्य है, और पूजने योग्य है, जिसको शम की प्राप्ति हुई है, उसको उद्वेग नहीं होता, उसकी क्रिया अमृत के समान है तथा उसके वाक्य भी अमृत तुल्य मीठे हैं, जिस प्रकार चन्द्रमा के किरण शीतल तथा अमृत रूप होते हैं,

और वह सबको हृदयाराम है तैसे ही सन्तजनों के वचन है, जिस पुरुष को शम की प्राप्ति हुई है, उसकी संगति जब इस जीव को मिलती है, तब सब परम आनन्दित होते हैं।

हे राम ! जैसे बालक माता को पाकर आनन्दित होता है, तैसेही जिस को शम की प्राप्ति हुई है उसके संग से जीव अधिक आनन्दवान् होता है, जैसे किसी का बान्धव मरकर फिर लौट आवे, और उसको आनन्द प्राप्त होवे, उससे भी अधिक आनन्द शम सम्पन्न पुरुष को पाय कर होता है, हे राम ! ऐसा आनन्द चक्रवर्ती राज्य पाने से भी नहीं होता, और त्रिलोकी राज्य पाने से भी नहीं होता, वरन् किसी का भय भी नहीं रहता, सिंह का भय भी उस को नहीं रहता, वह सदा निर्भय शान्त रूप रहता है, हे राम ! यदि कोई कष्ट आकर प्राप्त होवे, और काल की अग्नि आकर लगे तो, भी वह चलायमान नहीं होता, वरन् सदा

शान्त रूप रहता है, जैसे शीतल चाँदनी चन्द्रमा में स्थित है वैसे ही जो कुछ शुभ गुण और सम्पदा है, सो सब शमवान् के हृदय में आकर स्थित होती है।

हे राम ! जो पुरुष अध्यात्मिकादि ताप द्वारा जलता है, उसको जब हृदय में शम की प्राप्ति होवे, तब समस्त ताप मिट जाते हैं, जैसे तप्त पृथ्वी वर्षा द्वारा शीतल हो जाती है, वैसेही उसका भी हृदय शीतल हो जाता है, जिसको शम की प्राप्ति हुई है, सो सब क्रिया में आनन्द रूप उसको कोई दुःख स्पर्श नहीं करता जैसे बज्र शिला का वाण वींध नहीं सकता तैसे ही जिस पुरुष ने शम रूपी कवच पहन लिया है, उसको आध्यात्मिकादि ताप बेध नहीं सकता, वह सर्वदा शीतल रूप रहता है।

हे राम तपस्वी, पण्डित, याज्ञिक, नाढ्य, पूजन मान्य करने योग्य हैं, परन्तु जिसको शम की

प्राप्ति हुई है, सो सब से उत्तम है, और सबके पूजने योग्य है, उसके मन की वृत्ति आत्मतत्त्व को ग्रहण करती है शम के द्वारा पूर्ण है, और सब क्रियाओं में सोहती है, जिस पुरुष को शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध यह इन्द्रिय के विषय इष्ट अनिष्ट में राग दोष नहीं होता, उसको शान्तिवान् कहते हैं, हे राम! जो संसार के रमणीय पदार्थ में बंध्यमान नहीं होता, और आत्मानन्द द्वारा पूर्ण है, उसको शान्तिवान कहते हैं उसको संसार के शुभ अशुभ द्वारा मलिनता नहीं लगती, सदा शान्त रहता है, हे राम! ऐसा जो पुरुष है, सो इष्ट विषय की प्राप्ति में हर्षवान् नहीं होता। अंतर में सदा शान्त रहता है, उसको कोई दुःख स्पर्श नहीं करता, अपने आप में सदा परमानन्द रूप रहता है, तैसे ही शान्ति के पाने से सब दुःख नष्ट हो जाते हैं और सदा निर्विकार रहता है।

हे राम! वह पुरुष सब चेष्टा करते हुए दिखाई

देता है, किंतु सदा निर्गुण रूप है, उसको कोई क्रिया स्पर्श नहीं करती, जैसे जल में कमल निर्लेप रहता है, तैसे ही शान्तिवान् पुरुष सदा निर्लेप रहता है, हे राम ! जो पुरुष बड़ी राज सम्पदा और बड़ी आपदा को पाकर ज्यों का त्यों अलग रहता है, उसको शांतिवान् कहना चाहिये। हे राम ! जो पुरुष शांति से रहता है, उसका चित्त क्षण क्षण में राग दोषों से तपता रहता है, और जिसको शान्ति की प्राप्ति हुई है, सो अंतर्बाहिर शीतल है तथा सदा एक रस है जैसे हिमालय सदा शीतल रहता है, उसके मुख की कांति अत्यन्त सुन्दर हो जाती है, जैसे निष्कलंक चन्द्रमा होवे, तैसे ही शांतिवान् निष्कलंक रहता है। हे राम ! जिसको शांति प्राप्त हुई है, वह परम आनन्दित हुआ है, उसको परम लाभ प्राप्त होता है। ज्ञानी इसको परमपद कहते हैं, जिस को पुरुषार्थ करना है, उस को शांति की प्राप्ति करनी चाहिये, हे राम ! जैसे मैंने कहा है उस क्रमके द्वारा

शान्ति का ग्रहण करो तब संसार समुद्र के पार हो जाओगे।

इति श्री योगवाशिष्ठे मुमुक्षु प्रकरणे मुरादाबाद निवासी कन्हैयालाल मिश्र कृत भाषाटीकायां शमनिरूपणं नाम त्रयोदशः सर्गः ॥१३॥

चतुर्दशः सर्गः

अथ विचार वर्णनम्

वशिष्ठजी बोले—हे राम! अविचारका निरूपण सुनिये। जब हृदय शुद्ध होता है तब विचार होता है, और शास्त्रार्थ विचार द्वारा बुद्धि तीक्ष्ण होती है, हे राम! अज्ञान रूपी जो वन है उसमें आपदा रूपी बेल की उत्पत्ति है, उसको विचार रूपी खड्ग के द्वारा काटेगा, तब शांत आत्मा होगा, और जो सदा मोहरूपी हस्ती है, सो जीव के हृदय कमल को खण्ड खण्ड कर डालता है, तात्पर्य यह कि जो इष्ट अनिष्ट पदार्थ में राग द्वेष के द्वारा नहीं छेदा जाता। जब विचार रूपी सिंह प्रकट होवे, तब वह मोहरूपी हस्ती का नाश कर डालता है, और फिर शांतात्मा होती है

हे राम ! जिसको कुछ सिद्ध प्राप्त हुई है, सो विचार तथा पुरुपार्थ से ही हुई है, जो राजा होता है सो प्रथम विचार कर पुरुषार्थ करता है, तिसके द्वारा राज्य को प्राप्त होता है, बल, बुद्धि, तथा तेज, चतुर्थ जो पदार्थ आगमन और पञ्चम पदार्थ की प्राप्ति होती है, सो पाँचो की प्राप्ति विचार के द्वारा होती है, हे राम ! पुरुषों ने विचार का आश्रय लिया है, सो विचार की दृढ़ता करके जिसकी कामना करते हैं—उस को प्राप्त होते हैं, अतएव विचार इसका परम मित्र है, जो विचारवान् पुरुष है, सो आपदा में मग्न नहीं होता जैसे तुम्बी जलमें नहीं डूबती, तैसे ही वह आपदा में नहीं डूबता, हे राम ! वह विचार संयुक्त जो करता है, अर्थात् देता है, लेता है; सो सब क्रियायें सिद्ध का कारण रूप होती हैं। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष यह विचार की दृढ़ता के द्वारा ही सिद्ध होते हैं। विचार रूपी कल्पवृक्ष है, तिसमें जिसका अभ्यास होता है, वही पदार्थ की सिद्धि को पाता हैं।

हे राम ! तुम शुद्ध ब्रह्म का विचार ग्रहण कर

आत्मज्ञान को प्राप्त होओ, जैसे दीपक द्वारा पदार्थ का ज्ञान होता है, तैसे ही पुरुष विचार के द्वारा सत्य असत्य को जानता है, जिसने असत्य को त्याग कर सत्य की ओर यत्न किया है, उसको ही विचारवान् कहते हैं। हे राम! संसार रूपी समुद्र में आपदा रूपी तरंग चलते हैं, जो विचारवान पुरुष हैं सो संसार के भाव अभाव में कष्ट नहीं मानते जो कुछ विचार संयुक्त क्रिया होती है, उसका परिणाम सुख है जो विचार बिना चेष्टा होती है, उसको दुःख प्राप्त होता है। हे राम! अविचार रूपी कण्टक वृक्ष है, उसमें दुःख रूपी कंटक उत्पन्न होते हैं, और अविचार रूपी जो रात्रि है, उसमें तृष्णा रूपी पिशाचिनी आकर विचरती है, किन्तु जब विचार रूपी सूर्य उदय होता है, तब वह अविचार रूपी रात्रि और तृष्णा रूपी पिशाचिनी नष्ट हो जाती है।

हे राम।! हमारा यही आशीर्वाद है, कि तुम्हारे हृदय से अविचार रूपी रात्रि नष्ट हो जावे, विचार रूपी सूर्य के द्वारा आविचारित संसार दुःख का नाश

होता है जैसे बालक अविचार करके अपनी परछाहीं को वैताल समझ कर भय पाता है, और विचारकरने से वह भय नष्ट हो जाता है, तैसे ही अविचार संसार के दुःख को देता है, और सच्छास्त्र युक्ति का विचार करने से संसार भय नष्ट होना है। हे राम! जहाँ विचार है, वहाँ अन्धकार नहीं रहता, जहाँ प्रकाश नहीं वहाँ अन्धकार रहता है, तैसे ही जहाँ अविचार है, वहाँ संसार का भय रहता है और जहाँ आत्म विचार उत्पन्न होता है, वहाँ सुख को देनेहारे शुभ गुग आकर स्थित होते हैं, जैसे मानसरोवर में कमल की उत्पत्ति होती है, तैसे ही विचार में शुभ गुण की उत्पात्ति होती है, किन्तु जहाँ विचार नहीं, वहाँ दुःख का आगमन होता है।

हे राम! जो कुछ अविचार से क्रिया करते हैं, सो दुःख का कारण होती है। जैसे चूहा बिल को खोदकर मिट्टी निकालता है, सो वह मिट्टी जहाँ इकट्ठी होती है, वहाँ बेली की उत्पात्ति होती है, तैसे ही अविचार से यह पुरुष मृत्तिका रूपी पाप क्रिया को

इकट्ठी करता है, उससे आपदा रूपी वेली उत्पन्न होती है, अविचार रूपी घुनों का खाया सूखा वृक्ष है, तिसको सुख रूपी फल चाहते हैं, वे भी नहीं निकलते हैं, सो विचार किसका नाम है ? जिसके द्वारा अशुभ क्रिया न होवे, वरन् शास्त्रानुसार शुभ क्रिया होवे, उसी का नाम विचार है ।

हे राम ! विवेक रूपी राजा और विचार रूपी ध्वजा है, जहाँ विवेक रूपी राजा आता है, वहाँ विचार रूपी ध्वजा उसके साथ फिरती है, और जहाँ विचार रूपी ध्वजा आती है, वहाँ विवेक रूपी राजा भी आता है, जो पुरुष विचार से सम्पन्न हैं, सो पूजा करने योग्य है, उसको सब कोई प्रणाम करते हैं, जैसे दोयज के चन्द्रमा को सब प्रणाम करते हैं, तैसे ही विचारवान् को सब प्रणाम करते हैं ।

हे राम ! हमारे देखते २ अल्प वुद्धि वाले पुरुष भी विचार की दृढ़ता से मोक्ष पद को प्राप्त हुए हैं, अतएव विचार सबका परम मित्र है, विचारवान् पुरुष अन्तर्बाहिर शीतल रहता है, जैसे हिमालय पर्वत

अन्तर्बाहिर शीतल रहता है; तैसे ही वह भी शीतल रहता है। विचार के द्वारा पुरुष ऐसे पद को प्राप्त होता है जो नित्य, स्वच्छ, अनन्त और परमानन्द रूप है, उसको पाकर फिर उसके त्याग की इच्छा नहीं होती तथा और के ग्रहण की इच्छा नहीं होती, उसके इष्ट अनिष्ट विषय सब समान है, जैसे तरंग के उत्पन्न और लीन होने में समुद्र समान रहता है, तैसे ही विवेकी पुरुष को इष्ट अनिष्ट में समता रहती है: तथा संसार भ्रम नष्ट हो जाता है, आधाराधेय से रहित केवल अद्वैत तत्त्व उसको प्राप्त होता है।

हे राम ! यह जगत् अपने मन के मोह से उत्पन्न होता है और विचार करने पर दुःखदायी दीखता है, जैसे अविचार के द्वारा बालक को वैताल भासता है, तैसे ही इसको जगत् भासता है, जब ब्रह्म विचार की प्राप्ति होती है, तब जगत् भ्रम नष्ट होता है, हे राम ! जिसके हृदय में विचार होता है, वही समता को उत्पत्ति होती है, जैसे बीज से अंकुर निकल आता है वैसे ही विचार से समता हो जाती है और

विचारवान् पुरुष जिसकी ओर देखता है उसे ओर आनन्द ही दीखता है, दुःख कोई नहीं भासता है जैसे सूर्य को अन्धकार नहीं दीखता है, तैसे ही विचारवान् को दुख दिखाई नहीं देता। जहाँ अविचार है वहाँ दुःख है, जहाँ विचार है, तहाँ सुख है, जैसे अंधकार का नाश होने पर वैताल के भय का भी नाश हो जाता है तैसे ही विचार करने से दुःख का नाश हो जाता है।

हे राम! संसार रूपी जो दीर्घ रोग है, उसका नाश करने को विचार बड़ी औषधि है जिसको विचार की प्राप्ति हुई है उसके मुख की कांति उज्ज्वल हो जाती है, जिस भाँति पूर्णमासी के चन्द्रमा की उज्ज्वल कांति होती है, तैसे ही विचारवान् के मुख की उज्ज्वल कांति होती है, हे राम! विचार करके इस जीव को परम पद की प्राप्ति होती है जिसके द्वारा अर्थ की सिद्धि होवे, उसका नाम विचार है। और जिसके द्वारा अनर्थ की सिद्धि होवे, उसका नाम अविचार है, मानों अविचार रूपी मदिरा है, जो इस

को पीता है, वह उन्मत्त हो जाता है, उससे शुभ विचार कोई नहीं होता शास्त्र के अनुसार जो कुछ किया है, सो उससे नहीं होती, अर्थात् अविचार से अर्थ की सिद्धि नहीं होती।

हे राम! इच्छा रूपी जो रोग है, वह विचार रूपी औषधि से निवृत्त होता है, जिस पुरुष ने विचार द्वारा परमार्थ सत्ता का आश्रय लिया है। वह परम शांत हो जाता है, और हयोपादेय बुद्धि उसकी नहीं रहती, सब दृश्य को साक्षिभूत होकर देखता है, और संसार के भाव अभाव में ज्यों का त्यों रहता है तथा उदय अस्त से रहित निःसंग रूप है, जैसे समुद्र जल से पूर्ण है तैसे ही विचारवान् आत्मतत्त्व से पूर्ण है जैसे कोई अन्धकूप में पड़ा हुआ हाथ के बल से निकलता है, वैसे ही संसार रूपी अन्धकूप में गिरा हुआ विचार के आश्रय होकर विचारवान् पुरुष निकल सकता है।

हे राम! राजा को जो कोई कष्ट आकर प्राप्त होता है तब वह विचार करके यत्न करते हैं और

वह कष्ट दूर हो जाता है, अतएव तुम विचार करके देखो कि जो किसी को कष्ट प्राप्त होता है, सो विचार से मिट जाता है। तुम विचार का आश्रय करके सिद्ध को प्राप्त होओ। उस विचार को प्राप्त करने की रीति यह है कि वेद और वेदांत को सुने, पाठ करे, भले प्रकार विचारे, तब विचार की दृढ़ता से आत्मतत्त्व को प्राप्त हो सकेगा। जैसे प्रकाश के द्वारा पदार्थ का ज्ञान होता है, गुरु तथा शास्त्र के विचार से जो शून्य होवे, उसको आत्मपद की प्राप्ति नहीं होती। हे राम! जो विचार रूपी नेत्र से रहित है सो अन्धा है।

हे राम! ऐसा विचार करो कि मैं कौन हूँ, और यह संसार क्या है? तथा इसकी उत्पत्ति कैसे हुई है, और लीन कैसे होता है? इस प्रकार संत तथा शास्त्र के अनुसार विचार कर सत्य को जानो और असत्य को त्यागो, जिसको असत्य जान लिया है, उसको त्याग कर दो और सत्य में स्थित होओ। इसी का नाम विचार है, इस विचार के द्वारा आत्मपद की प्राप्ति होती है। हे राम! जिनको विचार रूपी

दिव्य दृष्टि प्राप्त हो गई है, उसको सब पदार्थ का ज्ञान होता है, विचार के द्वारा आत्मपद की प्राप्ति होती है, उसको पाने से परिपूर्ण होता है, फिर शुभ अशुभ संसारमें चलायमान नहीं होता, ज्यों का त्यों बना रहता है। जब तक प्रारब्ध का वेग होता है, तब तक शरीर की चेष्टा होती है, जब तक अपनी इच्छा होवे तब तक शरीर की चेष्टा करैं, फिर शरीर को त्याग कर केवल शुद्ध रूप हो जावे।

अतएव हे राम ! ब्रह्म विचार का आश्रय कर के तुम इस संसार समुद्र को तर जाओ जो ! रोगी होता है, वह इतना नहीं रोता कि जितना विचार रहित पुरुष रोता है, जिसको कष्ट प्राप्त होता है, वह इतना नहीं रोता। हे राम ! जो पुरुष विचार से रहित है, उसको सब आपदा आकर प्राप्त होती है, जसे सब नदियाँ स्वभावसे ही समुद्र में आकर प्रवेश करती हैं। हे राम ! कीच का कीड़ा हो जाना अच्छा है, तथा गर्त का कण्टक होना उत्तम है। अन्धकार पूर्ण बिलमें सर्प होना भी अच्छा है, किन्तु विचार से रहित

होना अच्छा नहीं है, क्योंकि जो पुरुष विचार से रहित है, तथा भोग में दौड़ता है, वह कुत्ता है।

हे राम! विचार से रहित पुरुष बड़े कष्टको पाते हैं, इसलिये एक क्षण भी विचार से रहित नहीं रहना। विचार से दृढ़ होकर निर्भय रहना कि मैं कौन हूँ और दृश्य क्या है, ऐसा विचार करके सत्यरूप आत्मा को जानकर दृश्य का त्याग कर देना। हे राम! जो पुरुष विचारवान् है, वह संसार के भोग में नहीं जाता और सत्य में ही स्थित होता है। विचार तब स्थित होता है, जब उसमें तत्व ज्ञान होता है, तत्वज्ञान से विश्राम होता है, विश्राम से चित्तका उपशम होता है, चित्त के उपशम से दुःख का नाश हो जाता है।

इति श्री योगवाशिष्ठे मुमुक्षु प्रकरणे मुरादाबाद निवासी कन्हैयालाल मिश्र कृत भाषाटीकायां विचारनिरूपणं नाम चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥

पञ्चदशः सर्गः

अथ सन्तोषवर्णनम्

वशिष्ठजी बोले—हे अविचार-शत्रु के नाशक रामचन्द्र ! जिस पुरुष को सन्तोष प्राप्त हुआ है, वह परम आनन्दित हुआ है, और त्रिलोकी का ऐश्वर्य उसको तिनके के समान तुच्छ दीखता है। हे राम ! अमृत पीने से जो आनन्द नहीं होता, और जो आनन्द त्रिलोकी के राज्य मिलने से भी नहीं होता, उससे अधिक आनन्द सन्तोषवान् को मिलता है। हे राम ! इच्छा रूपी रात्रि हृदय रूपी कमल को सकुचा देती है, किन्तु जब सन्तोष रूपी सूर्य उदय होता है तब इच्छा रूपी रात्रि का नाश हो जाता है, जैसे क्षीर समुद्र उज्वलता से शोभित होता है, तैसे ही सन्तोषवान् की कांति सुशोभित होती है।

हे राम ! त्रिलोकी के राजा की इच्छा यदि निवृत्त न हुई, तो वह दरिद्री है किन्तु जो निर्धन सन्तोषी है, वह सबका ईश्वर है। सन्तोष उसका

ही नाम है। श्रवण द्वारा जो अप्राप्त वस्तु की इच्छा न करै, और प्राप्त होवे, इष्ट अनिष्ट में रागद्वेष न धरे, इसका ही नाम सन्तोष है, सन्तोष ही परम पद है, सन्तोषवान् पुरुष सदा आनन्द रूप है। और आत्मस्थिति से तृप्त हुआ है। उसको और कुछ इच्छा नहीं होती। सन्तुष्ठतासे उसका हृदय प्रफुल्लित हुआ है, जैसे सूर्य के उदय होने पर सूर्यमुखी कमल खिल जाता है, तैसेही सन्तोषवान् प्रफुल्लित हो जाता है। जो अप्राप्त वस्तु है उसकी इच्छा नहीं करता, और जो अनिच्छित प्राप्त हुई है, उसको यथाशास्त्र क्रमशः ग्रहण करता है, उसका नाम सन्तोषवान् है, जैसे पूर्णमासी का चन्द्रमा अमृत के द्वारा पूर्ण होता है तैसे सन्तोषवान्का हृदय सन्तुष्टि के द्वारा पूर्ण होता है, किन्तु जो सन्तोष से रहित है, उसके हृदय रूपी वन में सदा दुःख और चिन्ता रूपी फूल फल उत्पन्न होते हैं।

हे राम! जिसका चित्त सन्तोषसे रहित है, उस को भाँति-भाँति की इच्छा होती है, जैसे समुद्र में तरह २ के तरंग उत्पन्न होते हैं, सन्तुष्टात्मा परम

आनन्दित है। उसको संसार के पदार्थ में हेयोपादेय बुद्धि नहीं होती। हे राम! सन्तोषवान्‌को जैसा आनन्द होता है, तैसा आनन्द अष्ट सिद्धि के ऐश्वर्य से भी नहीं होता तथा अमृत के पीने से भी नहीं होता सन्तोषवान् सदा शांतिरूप और निर्मल रूप रहता है, इच्छा रूपी धूरि सदा उड़ती है सो संतोष रूपी वर्षा के द्वारा शान्त हो जाती है, इस कारण सन्तोषवान् निर्मल है।

हे राम! संतोषवान् पुरुष सबको प्रिय लगता है, जिस प्रकार आम का परिपक्व फल सुन्दर और सबको प्यारा मालूम होता है, तैसे ही संतोषवान् पुरुष सबको प्यारा लगता है, और स्तुति करने योग्य है। जिस पुरुषको सन्तोष मिल गया है, उसको परम लाभ हुआ है। हे राम! जहाँ सन्तोष है, वहाँ इच्छा नहीं रहती, सन्तोषवान् भोग में दीन हो कर नहीं रहता, क्योंकि वह उदारात्मा है, सर्वदा आनन्द से तृप्त रहता है; जैसे मेघ पवन के आने से नष्ट हो जाता है, तैसे ही सन्तोष के प्राप्त होने से इच्छा नष्ट हो जाती है, और जो सन्तोषी पुरुष है,

उसको देवता, ऋषीश्वर, सब प्रणाम किया करते हैं, तथा धन्य धन्य कहते हैं। हे राम! जब यह जीव सन्तोष को प्राप्त होगा तब परम सुन्दरता धारण करेगा।

इति श्री योगवाशिष्ठे मुमुक्षु प्रकरणे मुरादाबाद निवासी कन्हैयालाल मिश्र कृत भाषाटीकायां सन्तोषनिरूपणं नाम पञ्चदशः सर्गः ॥१५॥

षोडषः सर्गः

अथ साधु संग वर्णनम्

वशिष्ठजी बोले—हे राम! अन्यान्य जितने कुछ तीर्थादिक साधन हैं, उनसे आत्मपद की प्राप्ति नहीं होती वरन् साधु-संग के द्वारा आत्मपद की प्राप्ति होती है, साधु-संग रूपी मानों एक वृक्ष है और उसका फूल आत्मज्ञान है, जिस पुरुष ने उस की इच्छा की है, वह अनुभव रूपी फल को पा लेता है। हे राम! जो पुरुष आत्मानन्द से खाली है वह सतसंग के द्वारा आत्मानन्द से पूर्ण होता है किन्तु अज्ञान से जो मरता है, वह सन्तके सङ्गसे ज्ञान पाकर अमर होता है, और जो आपदा के द्वारा

दुःखी है, वह सन्त के सङ्गसे सम्पदा को प्राप्त होता है। आपदा रूपी कमल का नाश करने वाली सत्सङ्ग रूपी हिम (वर्फ) की वर्षा है। सन्त-सङ्ग के द्वारा आत्म बुद्धि प्राप्त होती है, उसके द्वारा मनुष्य मृत्यु से रहित होता है, और दुःख से रहित होकर परमानन्द को प्राप्त होता है।

हे राम ! सन्तकी सङ्गति के द्वारा इसके हृदय में आत्मज्ञान रूपी दीपक प्रज्वलित होता है और उससे अज्ञान रूपी अन्धकार का नाश हो जाता है, तथा वड़े ऐश्वर्य को प्राप्त होता है; फिर किसी भोग पदार्थ की इच्छा नहीं रहती तथा बोधवान् होता है, सब से उत्तम पद में विराजता है, जैसे कल्पवृक्ष के निकट जाने पर अभीष्ट फल की प्राप्ति होती है, तैसे ही संसार समुद्र से तारने वाले सन्तजन हैं, जैसे धीवर नौका के द्वारा पार लगाता है तैसे ही सन्तजन युक्ति के द्वारा संसार समुद्र से उद्धार कर देते हैं, मोहरूपी मेघका नाशक सन्त का सङ्ग पवन है, जिनका देहादिक अनात्मा से स्नेह नष्ट हो गया है,

और शुद्ध आत्म विषे की स्थिति है, तिसके द्वारा तृप्त हुये हैं, फिर जिनकी बुद्धि संसार के इष्ट अनिष्ट से चलित नहीं होती, सदा समता भाव में स्थिति रहती है, ऐसे सन्त संसार समुद्र के पार उतारने में पुल जैसे और आपदा रूपी बेली को जड़ समेत नाश करने वाले हैं।

हे राम! सन्तजन प्रकाश रूप हैं, तिनके सङ्ग से पदार्थ की प्राप्ति होती है, और जो अपने पुरुषार्थ रूपी नेत्र से हीन हुए हैं, तिनको पदार्थ की प्राप्ति नहीं होती। जिस पुरुष ने सत्सङ्ग को छोड़ दिया है, वह नरक रूपी अग्नि में घन की नाईं भस्म होगा और जिन पुरुषों ने सत्सङ्ग किया है, उनको नरक रूपी अग्नि का नाश करने वाला सत्सङ्ग रूपी मेघ है।

हे राम! सत्संग रूपी मानों गङ्गा है, जिसने सतसंग रूपी गङ्गा में स्नान किया, उनको फिर तप, दान, आदि साधन की आवश्यकता नहीं। वह सत्सङ्ग करके परमगति को प्राप्त हो गया है, अतएव अन्य सब उपाय त्याग कर सत्सङ्ग को खोजना

चाहिये। जैसे निर्धन पुरुष चिन्तामणि आदिक धन को खोजता है, तैसे ही मुमुक्षु सत्सङ्ग को खोजता है। आध्यात्मिकादि तीन ताप के द्वारा जो जलता है, उसको शीतल करनेवाला सत्सङ्ग है, जैसे तपी हुई पृथ्वी मेघके द्वारा शीतल होती है, वैसे ही सत्संग के द्वारा हृदय शीतल होता है।

हे राम! मोहरूपी वृक्ष का नाश करनेवाला सत्संग रूपी कुल्हाड़ा है, सत्संग के द्वारा पुरुष अविनाशी पद को प्राप्त होता है, जिस पद के पाने से और पद पाने की इच्छा नहीं रहती, ऐसा सबसे उत्तम सत्संग है, जैसे सब अप्सराओं से लक्ष्मी श्रेष्ठ हैं, तैसे ही सत्संग कर्त्ता सबसे उत्तम है, इस लिये अपने कल्याण के निमित्त सत्संग करना तुमको योग्य है। हे राम! यह जो चारों मोक्ष के द्वारपाल हैं, सो तुमसे कह दिये, जिस पुरुष ने इनके साथ प्रीति की है, वे शीघ्र ही आत्मपद को प्राप्त होंगे, और जो इन की सेवा नहीं करते, वे मोक्ष को प्राप्त नहीं होते हे राम! इन चारों में से एक भी जहाँ आता है,

वहाँ तीनों और भी जाते हैं, जहाँ समुद्र रहता है, वहाँ सब नादियाँ आकर उपस्थित होती हैं, जैसे जहाँ समय आता है, वहाँ सन्तोष, विचार तथा सत्सङ्ग ये तीनों जाते हैं, जहाँ साधु—संगम होता है, वहाँ सन्तोष, विचार एवं शम ये तीनों आ जाते हैं, जहाँ कल्पवृक्ष रहता है, वहाँ सब पदार्थ आकर स्थित होते हैं, और जहाँ सन्तोष आता है, वहाँ शम, विचार सत्संग, ये तीनों जाते हैं, जैसे पूर्णमासी के चन्द्रमा में गुणकला सब इकट्ठी हो जाती हैं, तैसे ही जहाँ संतोष आता है, वहाँ और भी तीनों आ जाते हैं, और जहाँ विचार आता है वहाँ संतोष, उपशम तथा सत्संग आकर रहते हैं, जैसे श्रेष्ठ मन्त्री के द्वारा राज्य-लक्ष्मी आकर स्थित होती हैं, तैसे ही जहाँ विचार होता है, वहाँ और भी तीनों आते हैं, अतएव हे राम ! जहाँ चारों इकट्ठे होते हैं, वहाँ परम श्रेष्ठता जाननी चाहिये और हे राम ! यदि चारों न हो तो एक का तो अवश्य आश्रय करना चाहिये, क्योंकि जब एक आवेगा, तब चारों आकर स्थित होंगे, मोक्ष प्राप्त होने के यही

चार परमसाधन है, दूसरे किसी भी उपाय से मोक्ष नहीं मिल सकती।

श्लोकः

सन्तोषः परमोलाभः सत्संगः परमं धनं ॥
विचार परमंज्ञानं शमनं परमंसुखम् ॥ १ ॥

हे राम ! यह परम् कल्याणकर्ता इन चारों के द्वारा सम्पन्न है, उसकी ब्रह्मादिक स्तुति करते हैं, अतएव दन्त से दन्त लगाय इसका आश्रय करके मनको वशीभूत कर लेना चाहिये।

✓ हे राम ! यह मन रूपी हाथी विचार रूपी अंकुश के द्वारा वशमें होता है तथा मनरूपी वन में वासना रूपीनदी बहती है, जिसके शुभ अशुभ किनारे हैं, और पुरुषार्थ करना यह है कि मन को अशुभ की ओर से रोक कर शुभ की ओर चलाना, जब अन्तर्मुख आत्मा के सन्मुख वृत्ति का प्रवाह होगा, तव तुम परमपद को प्राप्त होगे। हे राम ! प्रथम तो पुरुषार्थ करना यही है, कि अविचार रूपी ऊँचाई को दूर कर देवे, जब अविचार रूपी बन्दा

दूर हो जायगा, तब आपही प्रवाह चलेगा।

हे राम! जो प्रवाह-दृश्य की ओर चलना है, वह बन्धन का कारण है, किन्तु जब आत्मा की ओर अन्तर्मुख प्रवाह होवे तब मोक्ष का कारण होजाता है। आगे जो तुम्हारी इच्छा ही सो करना।

इति श्री योगवाशिष्ठे मुमुक्षु प्रकरणे मुरादाबाद निवासी कन्हैयालाल मिश्रकृत भाषाटीकायां साधु संग निरूपणं नाम षोडशः सर्गः ॥१६॥

सप्तदशः सर्गः

अथ षट्प्रकरण वर्णन

वशिष्ठजी बोले हे राम! यह मेरे वचन परम पवित्र हैं, जो विचारवान् शुद्ध अधिकारी हैं, उसको यह परमबोध के कारण हैं, जो पुरुष शुद्ध पात्र है, वह इन वचनों को पाकर सोहता है, और वचन भी उसको पाकर शोभा पाते हैं, जैसे मेघ के अभाव से शरत्काल में चन्द्रमा और आकाश सुशोभित होते हैं, तैसे ही शुद्ध पात्र में यह वचन सोहते हैं, और जिज्ञासु निर्मल वचन की महिमा सुन कर आनन्दित होता है।

हे राम ! तुम परम शुद्ध पात्र हो, और इधर मेरे वचन भी परम उत्तम हैं, यह महारामायण मोक्षोपायका शास्त्र है, और आत्मबोध का परम कारण है तथा परम-पावन वाक्य की सिद्धि है, और युक्ति युक्तार्थ वाक्य है, तथा भाँति-भाँति के दृष्टान्त कहे हैं जिनके अनेक जन्म के पुण्य आकर इकट्ठे होते हैं, उनको ही कल्पवृक्ष मिलता है, सो वह फलों से झुक जाता है, तब यह शास्त्र सुन सकता है, नीच को इसका सुनना दुर्लभ है, उसकी वृत्ति इसके सुनने में नहीं लगती है, जैसे धर्मात्मा राजा की इच्छा न्याय-शास्त्र के सुनने में होती है, किन्तु पापात्मा राजाकी इच्छा नहीं होती, हे राम ! तैसे ही पुण्यवान् की इच्छा सुनने में होती है और अधर्म की इच्छा नहीं होती। जो कोई मोक्षोपायक इस रामायण को अध्ययन करेगा, अथवा निष्काम संत के मुख से श्रद्धा युक्त होकर सुनेगा, तथा आदि से लेकर अंत तक एकाग्र मन होकर विचारेगा, उसका संसार-भ्रम नष्ट हो जाता है, तैसे ही अद्वैतात्मा तत्वके जानने से उसका

संसार-भ्रष्ट नष्ट हो जायगा, इसमें संदेह नहीं।

इस मोक्षोपायक शास्त्र के बत्तीस हजार श्लोक और छैः प्रकरण हैं।

प्रथम वैराग्य प्रकरण, वैराग्य का परम कारण है। हे राम! मरुस्थल में वृक्ष नहीं होता, किन्तु बड़ी वर्षा होने पर वहाँ वृक्ष होता है, तैसे ही अज्ञानी का हृदय मरुस्थल के समान है, तिसमें वैराग्य रूपी वृक्ष नहीं होता, किन्तु जब यह शास्त्र रूपी बड़ी वर्षा होवे तो तिसके द्वारा वैराग्य रूपी वृक्ष उत्पन्न होता है, उसके एक हजार पाँच सौ श्लोक हैं तिसके अनन्तर मुमुक्ष व्यवहार प्रकरण है, तिसमें अत्यन्त निर्मल वचन है। जिस प्रकार मलिन मणि माजन करने पर उज्ज्वल हो जाती है, तैसे ही इन वचनों से ज्ञानी का हृदय निर्मल होता है और विचार के बल से आत्मपद पा सकता है। उसके पाँच हजार श्लोक हैं, इसके पीछे उत्पत्ति प्रकरण है, उसके हजार श्लोक हैं, इनमें बड़ी सुन्दर कथा दृष्टांत सहित वर्णन की है, जिस विचार से जगत् का सत्य भाव मन से च-

लायमान रहता है अर्थात् यह जगत् का अत्यन्त अभाव जान पड़ता है। हे राम! इस संसार में जो यह मनुष्य देवता, दैत्य, पर्वत, नदी आदि स्वर्ग लोक, पृथ्वी, तेज, वायु, आकाश, आदि स्थावर जंगम भाषता है, सो अज्ञान करके है, और इसकी उत्पत्ति ऐसे हुई है, जैसे जेवरी में सर्प और सीपी में चाँदी होती है, तथा सूर्य की किरण में जल दिखाई देता है, आकाश में तरुवर दीखता है, और जैसे दूसरा चंद्रमा दीखता है, जैसे गंधर्व नगर भासते हैं, मनोराज्य की सृष्टि भासती है, संकल्पपुर होता है, और सुवर्ण में भूषण होता है, समुद्र में तरङ्ग होती है, आकाश में नीलता दीखती है, जैसे नौका में बैठने से किनारे के वृक्ष पर्वत चलते दिखाई देते हैं तथा मेघ के चलने से चन्द्रमा चलता दीखता है, और स्तम्भ से पुतली दीखती है, भविष्यत् नगर से आदि लेकर असत्य पदार्थ जैसे सत्य भासते हैं, जैसे सब जगत आकाश रूपी है, अज्ञान के द्वारा अर्थाकार भासता है सो अज्ञान करके इसकी उत्पत्ति

मालूम होती है, और ज्ञान के द्वारा लीन हो जाती है, जैसे निद्रा में स्वप्न सृष्टि की उत्पत्ति होती है, और जगाने पर निवृत्तहो जाती है, तैसे ही अविद्या के द्वारा जगत् की उत्पत्ति होती है, और सम्यक् ज्ञान से निवृत्त हो जाती है, अतएव अविद्या कोई वस्तु ही नहीं, सर्व ब्रह्म चिदाकाश रूप शुद्ध, अनन्त और परमानन्द स्वरूप है, तिसमें न संसार उत्पन होता और न लीन होता है, ज्यों की त्यों आत्मसत्ता अपने आप में स्थित है, तिसमें संसार ऐसा है, जैसे दीवाल में चित्र होता है, जैसे स्तम्भ में पुतलियाँ होती हैं, और हवे बिना भासती हैं, तैसेही यह सृष्टि मन में रही हैं, वास्तव में कुछ बनी नहीं, सब आकाश रूप है, जब चित्त संवेदन स्पन्द रूप होता है, तब नाना प्रकार का जगत होकर भासता है, किन्तु जब निस्तंद होता है, तब मिट जाता है, इस भाँति जगत् की उत्पत्ति वर्णन की गई है। इसके पश्चात्।

स्थिति प्रकरण है, जिसमें जगत् की स्थिति वर्णन की गई है, जैसे इन्द्र का धनुष आकाश रूप

है और अविचार के द्वारा रङ्ग सहित भासता है, जैसे सूर्य की किरण में जल तथा जेवरी में सर्प भासता है, किन्तु वह सब सम्यक् दृष्टि के द्वारा निवृत होता है, तैसे ही अज्ञान करके जगत् रच लेता है, कुछ उत्पन्न नहीं हुआ है, तैसे ही यह जगत सङ्कल्प मात्र है, जब तक मनोराज्य है, तब तक वह नगर होता है, फिर जब मनोराज्य का अभाव हुआ, तब नगर का भी अभाव हो जाता है, जब तक अज्ञान होता है, तब तक संसार की उत्पत्ति होती है, किन्तु जब सङ्कल्प का लय हुआ, तब जगत् का भी अभाव हो जाता है, जैसे ब्रह्मा के दश पुत्र की सृष्टि सङ्कल्प करके स्थिति हुई, तैसे ही यह संसार भी है, कोई पदार्थ अर्थ रूप नहीं है, हे राम ! इस प्रकार स्थिति प्रकरण वर्णन किया है, इसके तीन हजार श्लोक हैं, उनकें विचार द्वारा जगत् की सत्यता जाती रहती है, इसके उपरान्त—

उपशम प्रकरण है, जिनके पाँच हजार श्लोक हैं, उनके विचार से अहंममत्वादिक वासना लीन हो

जाती है, क्योकि उसके निश्चय में जगत् नहीं रहता जैसे एक पुरुष सो रहा है, और उसको स्वप्न में जगत भासता है, और उसके निकट जो जागृत पुरुष है उसके स्वप्न का जगत् आकाश रूप है, जब आकाश रूप हुआ, तब वासना कैसे टिक सकती है? जब वासना नष्ट हुई, तब मनका उपशम हो जाता है, और देखने मात्र उसकी सब चेष्टायें होती हैं, इसके मन में अर्थ रूप इच्छा नहीं होती, जैसे अग्नि की मूर्ति देखने मात्र होती है, अर्थामार नहीं होती तैसे ही उसकी चेष्टा होती है। हे राम! जब मनसे इच्छा नष्ट होती है, तब मन भी निर्वाण हो जाता है, जैसे तेल से रहित दीपक निर्वाण हो जाता है, तैसे ही इच्छा से रहित मन भी निर्वाण हो जाता है, इस भाँति उपशम प्रकरण है, इसके पीछे—

निर्वाण प्रकरण है, जो शेष है, उसमें परम निर्वाण वचन वर्णित हैं, अज्ञान से चित्त और चित्त का सम्बन्ध है, सो विचार करने पर निर्वाण हो जाता है, जिस प्रकार शरत्काल में मेघ के अभाव से आ-

काश शुद्ध होता है, तैसे ही पुरुष विचार के द्वारा निर्मल होता है, हे राम ! अहंकार रूपी जो पिशाच है, सो वह विचार के द्वारा नष्ट होता है, जितनी इच्छा स्फुर्ति हैं, वह निर्वाण हो जाती है, जैसे पत्थर की शिला स्फुरने से रहित होती है, तैसे ही ज्ञानवान् व्यक्ति इच्छासे शून्य हो जाता है, तब जो कुछ जगत की यात्रा है सो उसका हो चुकती है जो कुछ करता है सो कर चुकता है, हे राम ! शरीर के विद्यमान होते हुए भी पुरुष अशरीरी हो जाता है, और उसे नाना प्रकार का जगत् नहीं भासता, वह जगत् की नेत से रहित हो जाता है, उसको अहममत्वादिक तम रूप जगत् नहीं भासता, जिस प्रकार सूर्य को अन्धकार दिखाई नहीं देता, तैसे ही उसको जगत् नहीं दीखता और वह बड़े पद को पा लेता है, जैसे सुमेरु पर्वत के किसी कोने में कमल होता है, तिसके ऊपर भौंरे स्थित रहते हैं, तैसे ही ब्रह्म के किसी कोनेमें जगत् तुषार रूप है, और जीव रूपी भौंरे उसपर स्थित हैं वह पुरुष अचिन्त चिन्मात्र है, रूप अवलोकन और

उसका मन आकाश रूप हो जाता है, उस पद को वह पा लेता है, उसपद की उपमा ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र भी वर्णन नहीं कर सकते, उस पद के समान दूसरा पद कोई नहीं है।

इति श्री योगवाशिष्ठे मुमुक्षु प्रकरणे मुरादाबाद निवासी कन्हैयालाल मिश्र कृत भाषाटीकायां षट्करण विवरणं नाम सप्तदशः सर्गः ॥१७॥

अष्टादशः सर्गः

अथ दृष्टांत वर्णनं

वशिष्ठजी बोले—हे राम! इस भाँति उत्तम वाक्य को विचारने द्वारा उस उत्तम पद को पा जाता है, जैसे उत्तम खेत में उत्तम बीज के बोने से उत्तम फल उत्पन्न होते हैं, तैसे ही उसको विचारने वाला उस उत्तम पद को पालेता है, यह वाक्य युक्ति सहित वाक्य है, किंतु युक्ति से रहित वाक्य आर्ष होने पर भी उनका त्याग कर देना चाहिए, और युक्ति पूर्वक वाक्य अङ्गीकार करना चाहिए।

हे राम ! युक्ति से रहित ब्रह्म वाक्य होने पर भी उसको सूखे तृण की नाईं त्याग दे, और बालक के वचन भी युक्ति पूर्वक हों, तो उनको अङ्गीकार करे, यदि पिताके कूप का जल खारी हो, तो उसको भी त्याग देवे, और निकट मीठे जल का कुआँ हो, तब उसका जल पान करे, तैसे ही बड़े और छोटे का विना विचार किये, युक्ति पूर्वक वचनों को अङ्गीकार करे । हे राम ! मेरे वचन युक्ति पूर्वक और परम बोध के कारण हैं, जो पुरुष एकाग्र मन होकर आदि से अन्त तक इस शास्त्र को पढ़े अथवा पण्डित से सुन कर विचारे, तब उसकी बुद्धि संस्कारित हो जायगी।

प्रथम वैराग्य प्रकरण को विचारने से वैराग्य उत्पन्न होगा जगत के जितने भी रमणीय भोग पदार्थ हैं, उनको विरस जानेगा, और किसी पदार्थ की कामना न करेगा, जब भोग में वैराग्य होता है, तब शान्ति रूप आत्मतत्त्व में प्रतीति होती है, जब विचार करके बुद्धि संस्कारित होगी, तब शास्त्र का सिद्धान्त बुद्धि में आकर स्थिति होगा और

संसार के विकार से रहित बुद्धि निर्मल होगी, जैसे शरत्काल में मेघ के अभाव होने से आकाश सब ओर से स्वच्छ होता है, तैसे ही बुद्धि निर्मल होगी, और फिर उसको आधिव्याधि की पीड़ा न होगी। हे राम! ज्यों ज्यों विचार दृढ़ होगा त्यों त्यों वह शान्तात्मा होगा, अतएव संसार के जितने यत्न हैं, उनका त्याग कर इस शास्त्र को बारम्बार विचारने से चैतन्यसत्ता उदय होगी और त्यों त्यों ही लोभ मोहादिक विकार की सत्ता नष्ट होगी, जैसे ज्यों ज्यों सूर्य का उदय होता है, त्यों त्यों अन्धकार का नाश होता है, तैसे ही विकार का नाश होगा, जिसके पाने पर संसार के लोभ नष्ट हो जायँगे, जैसे शरत्काल में मेघ का नाश हो जाता है, तैसे ही संसार के क्षोभ मिट जायँगे।

हे राम! ज्ञानवान् पुरुष को संसार के रागद्वेष नहीं घेर सकते, जैसे कवचधारी पुरुष को बाण नहीं बेध सकते, उसको भोग की इच्छा नहीं रहती, जब विषय भोग आकर विद्यमान् होता है तब उसको

विषय भूत जानकर बुद्धि ग्रहण नहीं करती, अर्थात् जानकर बाहर नहीं निकलती, तैसे ही उस अन्तर-आत्मा में ही स्थिति रहती है। जैसे पतिव्रता स्त्री अपने अन्तःपुर से बाहर नहीं निकलती। हे राम! बाहर से तो वह भी प्रकृति जन्य की नाईं दृष्ट आते हैं, जो कुछ अनिच्छित प्राप्त होते हैं, तिनको भोगता हुआ मनुष्य दृष्टि आता है, और अन्तर से उसको रागद्वेष नहीं फुरता।

हे राम! जितनी कुछ जगत् की उत्पत्ति तथा प्रलय का क्षोभ है, सो ज्ञानवान् को नष्ट नहीं कर सकता, जैसे आँधी चित्र की बेलि को चलायमान नहीं कर सकती, तैसे ही उसको जगत् का दुःख चलायमान नहीं कर सकता, और संसार की ओर से जड़ वृक्ष की नाईं तथा गम्भीर पर्वत की नाईं स्थिर और चन्द्रमा के समान शीतल हो जाता है। हे राम! वह आत्मज्ञान के द्वारा ऐसे पद को पाता है, जिसके पाने पर फिर और कुछ पाना शेष नहीं रहता, यह मोक्षोपाय शास्त्र आत्मज्ञान देने का कारण

है। जिसमें नाना प्रकार के दृष्टान्त वर्णित हैं, जो पदार्थ अपरिच्छिन्न हैं, और देखने में न आया हो उसको दृष्टांत कहते हैं, हे राम! यह जगत् कार्य कारण से रहित है, और आत्मा तथा जगत् की एकता कैसे होवे, इस लिये मैं जो दृष्टांत कहूँगा, उसका एक अंश अङ्गीकार मत करना। हे राम! कार्य कारण की कल्पना मूर्ख ने की है, उसके निमेष के निमित्त मैं स्वप्न दृष्टांत कहता हूँ, जिसके समझने से तुम्हारे मनका संशय नष्ट हो जावेगा, दृग और दृश्य का भेद मूर्ख को भासता है, मैं उसके दूर करने के लिये निमित्त स्वप्न दृष्टांत कहूँगा तिसके विचारने से मिथ्या विभाग की कल्पना का अभाव होता है। हे राम! ऐसी कल्पनाओं का नाश करने वाला यह मेरा मोक्ष उपाय शास्त्र है, जो पुरुष आदि से अन्त तक इसको विचारेगा, वह संकारी होगा, जो पद पदार्थ को जानने वाला हो, और दृश्य को बारम्बार विचारे तब उसका दृश्य भ्रम नाश को प्राप्त हो जाता है, इस शास्त्र के विचार के विषय में किसी

तीर्थ, तप, दान आदिक की आवश्यकता नहीं, जहाँ स्थान मिले तहाँ बैठे, जैसा भोजन गृह में होवे, उसी को खावे, और बारम्बार इसका विचार करे, ऐसा होने पर अज्ञानी नष्ट हो जाता है, और आत्मपद मिल जाता है। हे राम! यह शास्त्र प्रकाश रूप है, जिस प्रकार अन्धकार में कोई वस्तु नहीं दीखती, और दीपक के प्रकाश से चक्षु सहित दीखता है, तैसे ही शास्त्र रूपी दीपक विचार रूपी नेत्र सहित होवे, तब आत्मपद मिल जाता है।

हे राम! आत्मज्ञान के विचार बिना पद और आप को प्राप्त नहीं होता, जब विचार के द्वारा दृढ़ अभ्यास किया जाय, तब प्राप्त हो सकता है, अतएव इस मोक्ष उपाय परम पावन शास्त्र के विचारने पर जगत् का भ्रम नष्ट हो जायगा जगत् को देखते देखते जगत् भाव मिट जायेगा, जैसे सर्प की लिखी मूर्ति से अविचार करके भय पाता है, किन्तु विचार कर देखने से सर्प का भ्रम मिट जाता है, यद्यपि सर्प का आकार दीखता है, परन्तु उसका भय नष्ट हो जाता

है, तैसे ही यह जगत् का भ्रम विचार करने पर नष्ट हो जाता है, और जन्म मरण का भय नहीं रहता। हे राम! जन्म मरण का भय भी एक बड़ा दुःख है, परन्तु इस शास्त्र का विचार करने पर वह मिट जाता है, जिन्होंने उसका विचार त्याग दिया है, वह माता के गर्भ में कीट होंगे, और कष्ट से नहीं छूटेंगे, किन्तु विचार शील पुरुष आत्मपद को पावेगा और श्रेष्ठ ज्ञानी को सृष्टि अनन्त है, उसको अपना रूप भासता है कोई पदार्थ आत्मा से भिन्न नहीं भासता, जैसे जिसको जल का ज्ञान हुआ है, उसको लहर आवते सब जल रूप ही भासता है, तिसी प्रकार ज्ञानी जनों को सब आत्म रूप भासता है, तथा इन्द्रिय के भी इष्ट अनिष्ट की प्राप्ति में इच्छा दोष नहीं करता, निरन्तर एक रस और मन के संकल्प से सून्य शान्ति रूप होता है, जैसे मन्दराचल पर्वत के निकलने पर क्षीर समुद्र शान्ति को प्राप्त हुआ था, इसी प्रकार संकल्प विकल्प हीन यह पुरुष शान्ति रूप होता है।

हे राम! दूसरा जो तेज होता है, सो दाहक

होता है, किन्तु ज्ञान रूपी तेज जिस घट में उदय होता है, वह शीतल शान्ति रूप होता है, और फिर उसमें संसार का विकार कोई नहीं रहता, जैसे कलि-युग में शिखा वाला तारा उदय होता है, किन्तु कलियुग से अभाव होने पर नहीं उदय होता, तैसेही ज्ञानवान के चित्त में विकार की उत्पत्ति नहीं होती।

हे राम ! आत्मा के प्रसाद से ही यह संसार भ्रम उत्पन्न होता है, सो आत्मज्ञान के प्राप्त होने पर यत्न बिना ही शांत हो जाता है, फूल पत्र काटने से भी कुछ यत्न नहीं होता है, किन्तु आत्मा के पाने में कुछ यत्न नहीं होता क्योंकि बोध रूपी बोध ही करके जानता है। हे राम ! जो जानने मात्र से ही ज्ञान स्वरूप है, उसमें स्थिर होनेका क्या यत्न है ? आत्मा शुद्ध अद्वैत रूप है, तथा जगत् भ्रम मात्र है, जो पूर्वा पर का विचार करने से उसकी सत्यता न मिले तो उसको भ्रम मात्र ही जानना चाहिये, और पूर्वा पर का विचार करने पर जो सत्य हो उसी को रूप जा-नना। अतएव इस जगत् की सत्यता आदि अनन्त

विषे नहीं है वरन् स्वप्न के समान है। जैसे स्वप्न आदि अन्त में कुछ नहीं है, अतएव जाग्रत, स्वप्न दोनों को एक समान जानना चाहिये।

हे राम! यह बात तो बालक भी जानता है, कि जिसकी सत्यता आदि अन्त में न मिले, वह स्वप्नकी नाईं है, यदि आदि भी न हो तथा अन्त भी न रहे, उसको मध्य में भी असत्य जानना, इस विषय में दृष्टान्त कहे हैं, संकल्प पुरी के समान ध्यान नगर की नाईं, वा शाप के द्वारा जो उत्पन्न होता है, उसकी नाईं, औषधि के उपज की नाईं, इस पदार्थ की सत्यता आदि होती है, न अनन्तर होती है, और मध्य में जो भासता है, वह भी भ्रम मात्र है, तैसे ही यह जगत अकारण है तथा कार्य कारण भाव सम्बन्ध में भासता है, अतएव कार्य कारण जगत् हुआ, आत्मसत्ता अकारण है, जगत सागर है, और आत्मा निराकार है अर्थात् उसकी आकृति नहीं है।

मैं जो इस जगत का दृष्टांत आत्मा के विषे

दूँगा, उसका तुम एक अंश ग्रहण कर लेना, स्वप्न की सृष्टि होती है, और उसका पूर्वा पर भाव आत्म तत्त्व विषे मिलता है, क्योंकि जो अकारण है, उसका मध्य भाव का दृष्टांत नहीं मिलती, कारण जो उपमेय अकारण है, तो उसका इसकी समान दृष्टांत कैसे हो सकता है ? अतएव अपने बोध के निमित्त दृष्टांत का तुम एक अंश ग्रहण करना, हे राम ! जो विचार शील पुरुष हैं, वे गुरुपदेश तथा शास्त्रों को सुन कर सुखानन्द के लिये दृष्टांत का एक अंश ग्रहण किया करते हैं ।

हे रामचन्द्र ! उन्हीं को आत्म तत्व मिल जाता है । क्योंकि जो सारग्राही होते हैं, तथा अपने बोध के लिये दृष्टांत का एक अंश ग्रहण नहीं करते और तर्क वितर्क करते हैं,—उनको आत्मतत्त्व नहीं मिलता । अतएव दृष्टांत का एक अंश ग्रहण करना सर्वतोभाव से दृष्टांत को नहीं मिलाना, पृथक् को देखकर तर्क नहीं करना, दृष्टांत का सारभूत एक

अंश आत्मबोध के निमित्त ग्रहण करना, जसे कोई चीज़ अँधेरे में पड़ी होवे, उसको दीपक के उजाले से देख लेना—बस इतना ही दीपक से प्रयोजन है, किन्तु यह नहीं सोचना कि दीपक किसका है, । तेल बत्ती कैसी है ? और किस स्थान का है ? केवल दीपक का प्रकाश ही अङ्गीकार करना, उसी प्रकार आत्मबोध के लिये दृष्टांत का एक अंश अङ्गीकार करना चाहिये ।

हे रामचन्द्र ! तुम उसी वचन का ग्रहण करना जिसके द्वारा वाक की अर्थ सिद्धि होवे । इसके अन्यथा त्याग करना । अनुभव को प्रकट करने वाले वचन ग्रहण करना, क्योंकि श्रेष्ठ पुरुष वही है, जो अपने बोध के लिये वचन को ग्रहण करता है किन्तु वाद के लिये ग्रहण करने वाला चोगचंचु है—वह अर्थ को सिद्ध नहीं करता । यदि कोई अभिमान को लेकर कहता है, वह मानों हाथी की नाईं अपने मस्तक पर धूल उलीचता है । उसके किसी अर्थ की

सिद्धि नहीं होती। किन्तु जो अपने बोध के लिये वचन को ग्रहण करता है और विचार के साथ उस-का अभ्यास करता है, उसके आत्मा को शान्ति मिल जाती है। आत्मपद पाने के लिये अभ्यास की अव-श्य आवश्यकता है। जब शम, विचार, सन्तोष तथा सन्तों की संगति के द्वारा परम बोध प्राप्त होता है, तब ही परम पद मिल जाता है।

हे राम! जो कोई भी उसका दृष्टान्त कहता है सो एक देश लेकर कहता है-सर्व मुख कहने पर अखण्डता का नाश हो जाता है। यदि सर्व मुख दृष्टान्त मुख्य को माना जाय, तो वह सत्य रूप होता है। सो ऐसा तो नहीं—आत्मा सत्य रूप है तथा कार्य कारण से रहित शुद्ध चैतन्य है, उसको जानने के लिये कार्य कारण रूप जगत् का दृष्टांत कैसे दिया जा सकता है? इस जगत का दृष्टांत जो भी कहता है, वह एक ही अंश लेकर कहता है, और बुद्धिमान् भी दृष्टांत के एक ही अंश को ग्रहण

करते हैं और जो श्रेष्ठ हैं—वे अपने बोध के लिये सार को ग्रहण किया करते हैं एवं जिज्ञासु को भी यही उचित है कि अपने बोधके लिये स्मरण को ग्रहण करे और बाद को ग्रहण न करे। जिस प्रकार क्षुधार्थी व्यक्ति को चावल पाक आकर प्राप्त होवे, तब आहार करने की आवश्यकता है। तथा उसकी उत्पत्ति और स्थिति का वाद करना व्यर्थ है।

हे राम! जिससे अनुभव प्रकट हो—वाक्य उसी का नाम है। अनुभव को प्रगट न करने वाले वाक्य को त्याग देना चाहिये। चाहे आत्मानुभव के प्रकट करने वाला स्त्री का वाक्य ही क्यों न हों उसको भी अंगीकार कर लेवे। किन्तु अनुभव को प्रकट न करने वाले परमगुरु वेद-वाक्य को भी ग्रहण न करे। जिस समय तक विश्राम न मिले, तब तक विचार करने में लगा रहे। विश्राम को तुर्यपद कहते हैं। जब विश्राम प्राप्त हुआ-तब अक्षय शान्ति प्राप्त हो जाती है। जिस प्रकार मन्दर पर्वत के शोभा

से क्षीर समुद्र को शान्ति हुई थी, तैनी ही शान्ति मिल जाती है। हे रामचन्द्र ! तुर्यपद संयुक्त पुरुष है, उसका प्रयोजन श्रुति स्मृति तथा युक्त कर्मों के द्वारा सिद्ध नहीं होता। तथा न करने से कुछ प्रत्य-वाय नहीं होता। सदेह, विदेह गृहस्थ अर्थ वा विर-क्तही क्यों न हो, उसको कर्त्तव्य फिर कुछ नहीं रहता वह तो संसार-सागर से पार ही हो चुका है।

हे रामचन्द्र ! उपमेय को जो उपमा के द्वारा जानता है, सो वह एक ही अंश को ग्रहण करके जानता है तब उसको बोध प्राप्त होता है। किन्तु बोध रहित मनुष्य को मुक्ति नहीं मिलती-वरन वह व्यर्थ का वाद करता है।

हे रामचन्द्र ! जिस मनुष्य के हृदय में शुद्ध स्वरूप आत्मा सत्ता विराजित है, वह उसको त्याग कर अन्य विकल्प उठाता है। उसको बोगञ्च और महामूर्ख कहा गया है।

हे रघुनाथ ! जो अर्थ प्रत्यक्ष है, वह प्रमाण

माननें योग्य है और अनुमान अर्थापत्ति इत्यादि प्रमाण से उसकी सत्ता प्रत्यक्ष होती है। जिस प्रकार समुद्र सब नदियों का अधिष्ठान स्वरूप है उसी प्रकार सब प्रमाणों का अधिष्ठान प्रत्यक्ष प्रमाण है। उस प्रत्यक्ष को भी मैं बतलाये देता हूँ सुनो।

हे रघुवर! चक्षु रूपी ज्ञान संमत संवेदन है-वह जिस चक्षु करके विद्यमान होता है, उसका नाम प्रत्यक्ष प्रमाण है। उस प्रमाण को भी विषय करने-वाला जीव है। अपने यथार्थरूप के अज्ञान द्वारा अनात्मा रूपी दृश्य बना है-उसमें अहंकृति करके अभिमान हुआ है—अभिमान सब दृश्य है—उससे ही हेयोपादेय बुद्धि हुई है। और रागद्वेष के द्वारा जकड़ा पड़ा है—अपने को कर्त्ता समझ कर बहि-र्मुख हुआ भटकता है।

हे रघुवंशमणि! जिस समय विचार के द्वारा वह संवेदन अन्तर्मुखी हो जाय, तब उस आत्मपद का प्रत्यक्ष दर्शन होता है और अपने भाव को पा

जाता है। फिर परिच्छिन्न भाव नहीं रहता। शुद्ध शान्ति को प्राप्त होता है। जिस प्रकार स्वप्न में जागने से स्वप्न का शरीर और दृश्य भ्रम नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार आत्मा के प्रत्यक्ष होने से समस्त भ्रम नाश को प्राप्त हो जाता है। और शुद्ध आत्मसत्ता का दर्शन होने लगता है।

हे रघुकुल तिलक राम! यह दृश्य और द्रष्टा मिथ्या है-जो द्रष्टा है-वह दृश्य है-वह द्रष्टा होता है-सो यह भ्रम मिथ्या आकाश रूप है। जिस प्रकार पवन में स्पन्द शक्ति विद्यमान् रहती है, तिसी प्रकार आत्मा में संवेदन शक्ति रहती है जब संवेदन स्पन्द रूप होता है तब दृश्य रूप होकर स्थित होती है। स्वप्न में अनुभव सत्ता दृश्य है इससे सब आत्मसत्ता है, इस भाँति विचार करके तुम आत्मपद प्राप्त करो। और यदि ऐसा विचार कर आत्मपद को प्राप्त न कर

सको, तब जो अहंकार उल्लेख फुरता है उसका नाश कर डालो। फिर जो शेष रहेगा-उसी को शुद्ध बोध आत्मसत्ता कहा जाता है। जब तुम शुद्ध बोध को पालोगे—तब फिर चेष्टा होगी जैसे यन्त्र की पुतली संवेदन के बिना ही चेष्टा किया करती है तीसी प्रकार देह रूपी पुतली का चलानेवाला मन रूपी संवेदन है। किन्तु अहंभाव का नाश हो जायगा। अतएव तुम उठकर उस पद को पाने का अभ्यास करो जो नित्य शुद्ध और शान्ति रूप है।

हे दशरथ नन्दन! दैव शब्द को त्याग कर अपना पुरुषार्थ करो। और आत्मपद को प्राप्त होओ पुरुषार्थ के द्वारा ही आत्मपद मिल जाता है और जो नीचे पुरुषार्थ का अवलम्बन करता है, उसको संसार-रूपी समुद्र में डूबना पड़ता है। इसमें सन्देह नहीं।

हे नरोत्तम! इस प्रकार मैंने यह सब विषय विस्तार सहित तुम से वर्णन किया, इसके अनुसार